http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र

भाग 18

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

आध्यात्म योगी पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्र माला 13, से 14 भाग
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर - मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकाशकीय

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

श्रीमदुमास्वामी द्वारा प्रणीत 'मोक्ष शास्त्र' जैन धर्म व जिनशासन का प्राण है। प्रणेता ने छोटे छोटे सूत्रों में गागर में सागर भर दिया है। इस पर आठ दस शताब्दी पूर्व श्रीमद्भट्टाकलंकदेव, श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामी जसे दिग्गजों ने टीकाएँ की हैं। परन्तु टीकाएँ संस्कृत में होने के कारण जनसामान्य के उपयोग में नहीं आतीं।

यह समाज के परमहित व उपकार की बात है कि पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। धर्म के मर्म को महाराज श्री ने किस प्रकार उजागर किया है, यह तो ग्रन्थ के अध्ययन से ही पता लगता है।

जिज्ञासु बन्धुओं से निवेदन है कि इस प्रवचन में संजोये रत्नों का लाभ उठायें जिससे मोक्ष मार्ग में प्रगति हो और सत्य सहज आनन्द प्राप्त हो।

मंगलाकांक्षी
मंत्री
सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ॐ

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

अष्टदश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ……॥५–२३॥

पुद्गल का लक्षण व पुद्गल के गुणों में सर्वप्रथम स्पर्श कहने का कारण—इस सूत्र में पुद्गल का लक्षण कहा गया है। जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण वाला है वह पुद्गल कहलाता है। ये ४ गुण हैं। गुण कहते हैं द्रव्य में रहने वाली शक्तिओं को। गुणरूप से देखे गये ये चारों शाश्वत हैं, एक रूप हैं, सहज हैं, और इनको पर्यायरूप से देखा जाय तो जैसे अभी वर्णन आयगा कि किसके कितने भेद हैं उनकी पर्याय जानी जायगी। वे पर्यायें उस काल में हैं, आगे बदल जाती हैं। तो यहाँ मुख्यता है गुणों की। जिनमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये चार गुण पाये जायें उनको पुद्गल कहते हैं। इन चारों में सबसे पहले स्पर्श का ग्रहण किया है क्योंकि इनका विषयबल सबसे अधिक है। सभी विषयों में स्पर्श का बल अधिक देखा जाता है। जितनी भी इन्द्रियाँ अपने विषय को स्पर्श करके ग्रहण करती हैं उनमें सर्वप्रथम स्पर्श के ग्रहण की प्रकटता होती है। ऐसी इन्द्रियाँ हैं चार जो पदार्थ का स्पर्श करके जानें। स्पर्शन् इन्द्रिय पदार्थ को छूकर जानती है। रसना इन्द्रिय भी पदार्थ को छूकर ही तो रस ग्रहण करती है। गन्ध भी देखने में जरूर ऐसा आती कि यह नाक फूल के पास नहीं गई और दूर से ही सूँघ लिया, किंतु फूल के जो सुगन्धित परमाणु हैं उनमें कई तो वे ही नाक के पास आ जाते और अनेक परमाणु जो अन्तराल में पड़े हुए हैं सो फूल के परमाणुओं का निमित्त पाकर अन्य परमाणु सुगन्धित होते हैं। इसी परम्परा से अन्य-अन्य परमाणु सुगन्धित होते जाते हैं और नाक में उनका संयोग होता है तब गन्ध का ग्रहण होता है और कर्ण भी स्पर्श करके ही जान पाते हैं मगर यहाँ शब्द का ग्रहण नहीं है क्योंकि शब्द गुण नहीं, किंतु पर्याय है। तो यहाँ यह बताया जा रहा कि जितनी भी इन्द्रियाँ छूकर पदार्थ का ज्ञान करती हैं उनका सबसे पहले स्पर्श होता है इसलिए स्पर्श इन्द्रिय के विषय को बलवान बताया है। फिर दूसरी बात यह है कि स्पर्श तो सर्वसंसारी जीवों के पाया जाता। एकेन्द्रिय हो तो उसके तो स्पर्श है ही, और कुछ है ही नहीं, पर दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भी स्पर्शन इन्द्रिय तो है ही। तो सर्व संसारी जीवों में ये स्पर्शन इन्द्रिय पायी जाती हैं और वे स्पर्श का विषय भी करती हैं। इससे भी सूत्र में सबसे पहले स्पर्श का ग्रहण किया है। यहाँ कोई शंका करता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है कि रस का भी तो बड़ा बल है। मनुष्य प्रायः रसना इन्द्रिय के बहुत वश में हैं, और पशु-पक्षी तो रात-दिन खाने और स्वाद की ही धुन में रहा करते हैं। तो रस चूंकि बलवान विषय है इसलिए उसका ग्रहण पहले करना चाहिये था ?तो उत्तर इसका यह है कि भले ही रसका एक व्यापक प्रभाव दिख रहा है। कई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि स्पर्श का सुख नहीं चाह रहे पर रस के ग्रहण में आसक्त रहा करते हैं। भले ही ये सब बातें दिख रही हैं तो भी यह तो समझना चाहिये कि जो कोई भी रस का ग्रहण करता है तो वह स्पर्श होने पर करता । कोई भी चीज खाये तो उसका जब तक स्पर्श न हो तब तक ग्रहण कैसे होगा ? तो स्पर्श के होने पर ही रस का ग्रहण होता है, इस कारण स्पर्श का ग्रहण करना श्रेष्ठ है पहले।

सूत्र में रस गन्ध वर्ण शब्द के इस क्रम से रखे जाने के कारण—स्पर्श के बाद रस ही प्रबल दिख रहा है इससे रस का ग्रहण किया है। यहाँ कोई यह संदेह न करे कि वायु में स्पर्श तो पाया जाता है पर रस नहीं पाया जाता सो यह कहना बेकार रहा कि सारे पुद्गल चारों गुण वाले होते हैं। यह शंका इसलिए न रखना कि वायु में भी रस गन्ध वर्ण पाये जाते हैं, हम उनका नहीं ग्रहण कर पाते पर ये सब अविनाभावी हैं। जहाँ एक रहे वहाँ सभी पाये जाते हैं इसलिये वायु में भी चारों पाये जाते हैं। हाँ जैसे स्पर्श का प्रकट ग्रहण होता है उस प्रकार वायु में रस आदिक का ग्रहण नहीं होता, क्योंकि चक्षु इन्द्रिय स्थूल विषय को ग्रहण करती है। रस आदिक भी स्थूल विषय को ग्रहण करते हैं। तो वायु में अन्य गुण पर्यायों का ज्ञान नहीं हो पाता, पर जिसमें स्पर्श है उसमें चारों ही हैं। यह एक अविनाभावी नियम है। अब यहाँ रस के बाद और वर्ण से पहले गन्ध शब्द का प्रयोग किया है। तो शेष दो ही तो रह गए थे—गन्ध और वर्ण । उनमें ही तो छाँट होनी है कि पहले कौन कहा जाय तो चूंकि रूप चाक्षुष है और गन्ध अचाक्षुष है इसलिए गन्ध को रूप से पहले ग्रहण किया है। तो चार गुणों के क्रम का रखने का यह भी कारण है कि चूंकि जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु इस क्रमसे इन्द्रियाँ पायी जाती हैं। जो एकेन्द्रिय है उसका स्पर्शन ही है। जो दो इन्द्रिय हैं उसके स्पर्शन रसना है, तीन इन्द्रिय के स्पर्श, रसना, घ्राण है, चौ इन्द्रिय के स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु हैं। तो उनके विषयभूत पर्यायों के आधार ये गुण नाम भी इसी क्रम से रखे गये हैं। वर्ण का अन्त में ग्रहण किया है, क्योंकि यह स्थूल है। तभी इसकी उपलब्धि होती है। यहाँ द्वन्द्व समास किया गया है। स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण इन चारों का द्वन्द्व समास करने पर एक पद बन जाता है। फिर उसमें मतुप् प्रत्यय लगाया जाता है। जिसका अर्थ है इनसे युक्त, याने स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये जिनके पाये जायें उन्हें कहते हैं स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण वाला। पुद्गल में ये चारो गुण शाश्वत हैं, सदा रहते हैं, इसलिए इसमें मतुप् बहुत ही संगत लगा हुआ है।

स्पर्श और रस गुण की पर्यायों के मूल प्रकार—अब इन चार गुणों के भेद कहे जाते हैं। स्पर्श के भेद आठ हैं—(१) कोमल (२) कठोर (३) वजनदार (४) हल्का (५) ठण्डा (६) गरम (७) चिकना और (८) रूखा, ये आठ प्रकार के परिणमन होते हैं। यहाँ यह जानना चाहिये कि जो परमाणु हैं उनमें तो चार गुण की ही व्यक्ति है (१) शीत (२) उष्ण (३) चिकना और (४)रूखा। परमाणु में कोमल कठोरपना नहीं है अनेक परमाणुओं का पिण्ड हुए बिना कोमल और कठोरपना नहीं बन पाता, इसी प्रकार परमाणुओं में कोई परमाणु वजनदार हो, कोई हल्का हो यह भी भेद नहीं होता। यह भेद होता है अनेक परमाणुओं के पिण्ड में। तो जो ८ भेद बताये गए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं यह परमाणु और स्कन्ध दोनों को ही पुद्गल दृष्टि में रखकर कहा है। रसके भेद ५ हैं—(१) तीखा (२) कड़वा (३) खट्टा (४) मीठा और (५) कषायला। तीखा रस जैसे नमक मिर्च में होता है। कड़वा रस गुरबेल आदिक कड़वी दवाइयों में होता है अथवा करेले में भी पाया जाता है। चूंकि ये पांचों ही रस इष्ट भी हैं, अनिष्ट भी हैं। किसी को कुछ इष्ट लगता है किसी को कुछ। तो कई कड़वी चीजें इष्ट भी लगती हुई देखी गई हैं। कुछ ऐसा भी समझ में आता है कि जो चीज प्रकृत्या कड़वी नहीं होती और वह कदाचित कड़वी निकल जाय तो वह बहुत अनिष्ट लगती हैं। जैसे बादाम कड़वी नहीं है, पर कोई कड़वी निकल जाय तो उससे बहुत व्यग्रता होने लगती है। करेला प्रकृत्या कड़वा है और रुचिकर कड़वा है। कोई औषधियां तो प्रकृत्या कड़वी होकर भी रुचिकर नहीं होती। तो इससे जाना जाता है कि पाँचों ही रस इष्ट भी हैं, अनिष्ट भी। अम्ल को खट्टा कहते हैं। जैसे कच्चा आम, नीबू आदिक में होता है। ये अम्ल गुण की पर्यायें हैं। मधुर मायने मीठा, शक्कर आदि में और कषायला आँवला आदि में होता है। ये ५ प्रकार के रस हैं। ये पाँचों ही किसी को मनोज्ञ हैं और किसी को अमनोज्ञ हैं। मीठा जैसा रस भी अनेक लोगों को इष्ट होता और अनेकों को अनिष्ट होता और वे रंच भी मीठा रस नहीं पसन्द कर पाते। तो ऐसे रसना इन्द्रिय के विषयभूत रूप पर्यायें ५ प्रकार की पाई जाती हैं।

गन्ध और वर्ण गुण की पर्यायों के मूल प्रकार व शब्द के निर्देशन की भूमिका—गन्ध दो प्रकार का है—(१) सुगन्ध और (२) दुर्गन्ध। गुलाब के फूल आदिक में सुगन्ध मानी गई है। मल आदिक में दुर्गन्ध मानी गयी है। इष्ट अनिष्ट की बात देखो—और सब जीवों की ओर से देखो तो ये दोनों प्रकार के गन्ध किसी को इष्ट होते हैं और किसी को अनिष्ट। वर्ण ५ प्रकार के हैं—(१) नीला (२) पीला (३) सफेद (४) काला और (५) लाल। यद्यपि रंग सैकड़ों प्रकार के देखने में आते हैं लेकिन मूल भेद ये पांच ही हैं। इनके मिलावट से अनेक रंग बन जाते हैं। जैसे हरा रंग मौलिक नहीं है। नीला और पीला मिलकर हरा बन जाता है। ऐसे अनेक प्रकार के रंग एक मिश्रित रंग हैं। उन सब रंगों के मूल प्रकार पांच हैं। तो जैसे रंगों के भेद अनेक पाये जाते हैं ऐसे ही इन बाकी तीन गुणों की पर्यायें भी अनेक प्रकार की पाई जाती हैं। जैसे ठण्डा कोई कम ठण्डा कोई अधिक ठण्डा अनेक प्रकार के शीत पाये जाते हैं। इसी तरह सभी में अनगिनते भेद समझ लेना चाहिये। पुद्गल के गुण तो बताये गये हैं। अब कर्णेन्द्रिय के विषयभूत शब्द उनमें नहीं आये क्योंकि शब्द कोई गुण नहीं है, शब्द वस्तु में शाश्वत नहीं पाये जाते। पदार्थ के टक्कर से, वियोग से शब्द की उत्पत्ति होती है। तो जो शब्द पर्याय होने के कारण छोड़ दिया गया था उसको आदि लेकर और पर्यायें भी ऐसी हैं जो पुद्गल में पायी जाती हैं उनका वर्णन करते हैं।

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥५—२४॥

पुद्गल द्रव्य की द्रव्य पर्यायों का निर्देश—सूत्र का अर्थ है शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत वाले पुद्गल हैं अर्थात पुद्गल में ये सब पर्यायें पायी जाती हैं। इस सूत्र में जिन पर्यायों का कथन है वे सब द्रव्य व्यञ्जन पर्यायें हैं। पर्याय दो प्रकार की होती हैं—(१) गुण व्यञ्जन पर्याय और (२) द्रव्य व्यञ्जन पर्याय। गुण की दशा का नाम गुण पर्याय है और पदार्थ के प्रदेशों की विशेषता का नाम द्रव्य पर्याय है। इस सूत्र में दो पद हैं—अन्तिम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पद है च और शेष सारा पद एक है। इस पूर्व पद में पहले तो द्वन्द्व समास करके उन सबमें मतुप् प्रत्यय समासित किया है। ये सब १० पर्यायें हैं। इन १० शब्दों का द्वन्द्व समास करके फिर उसमें मतुप् प्रत्यय से सम्बन्ध कराया गया है, जिसका अर्थ होता है कि पर्यायों वाला, पुद्गल होता है। इन सबका शब्दानुसार अर्थ देखा जाये तो उनका अर्थ एकदम स्पष्ट होता है।

शब्द और बन्ध शब्द का निरुक्त्यर्थ—'शब्द' शब्द बना है शप धातु से, जिसकी निरुक्ति है शपयति अर्थं आह्वयति इति शब्दः। जो पदार्थ को जताये उसे शब्द कहते हैं। पदार्थ के वाचक शब्द हुआ करते हैं। वही अर्थ इस धातु से बनता है। अथवा करण साधन से जो अर्थ किया जाये तो निरुक्ति बनती है—शप्यते येन इति शब्दः जिसके द्वारा व्यवहार किया जाये, संकेत किया जाये उसे शब्द कहते हैं, अथवा भाव वचन से अर्थ किया जाये तो निरुक्ति बनेगी शपनमात्र इति शब्दः याने एक सूचन होना सो शब्द है। यह शब्द पर्याय अनेक स्कंधों के मिलने बिछुड़ने से होता है। मुख से भी जो शब्द बोले जाते हैं उनमें भी स्कंधों का मिलना बिछुड़ना मालूम पड़ता है। जैसे कंठ, ओठ, जिह्वा, मूर्धा, तालू दन्त आदिक साधन हैं, उनका सम्बन्ध होने से सम्बन्ध करके वियोग करने से इन सब शब्दों की उत्पत्ति होती है। तो शब्द पुद्गल की द्रव्य व्यञ्जन पर्यायें हैं। बंध का अर्थ है बन्धन, जो बाँधे उसे बन्ध कहते हैं। यह अर्थ निकला, कर्तृ साधन से। बध्नाति इति बन्धः जो बाँधे उसे बन्ध कहते हैं। बन्ध ही तो बाँधे रहता है अथवा करण साधन से अर्थ निकला बध्यते असौ इति बन्धः। जो बन्धा करे वह बन्ध हैं। निश्चय से तो बन्ध ही बन्ध रहा है अथवा भाव साधन से अर्थ है बंधनमात्रं इति बंधः, बंधने का नाम बंध है। दो पुद्गल स्कन्ध बंध जायें या दो परमाणु बंध जायें तो उसे बंध कहते हैं। बंध होता है मिलने से। और यह मिलना बना है प्रदेशों में इसलिये बंध गुण पर्याय नहीं है किन्तु द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है।

सौक्ष्म्य और स्थौल्य शब्द का निरुक्त्यर्थ—तीसरी पर्याय है सूक्ष्मता। सूक्ष्म शब्द बना है सुच धातु से, जिसकी निरुक्ति है लिंगेन आत्मानं सूचयति इति सूक्ष्मः, चिन्ह से जो अपनी सूचना दे उसे सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म पदार्थ स्पष्ट तो दिखते नहीं किन्तु किन्हीं चिन्हों से युक्तियों से उसकी पहिचान की जाती है और इसी कारण इसका नाम सूक्ष्म रखा, या करण साधन से अर्थ किया तो सूच्यते असौ इति सूक्ष्मः जो सूचित किया जाये संकेतों के द्वारा परिचय में आये उसे सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म पदार्थ स्पष्ट परिचय में नहीं आते किन्तु किन्हीं चिन्हों के द्वारा उनका परिचय किया जाता है, युक्तियों से जाना जाता है तो यह कहलाता है सूक्ष्म। अथवा भावसाधन अर्थ करें तो निरुक्ति होगी—सूचनमात्रं इति सूक्ष्मः, सूक्ष्म हुआ वह पदार्थ जो स्पष्ट तो नहीं जाना जा सकता किन्तु किन्हीं चिन्हों के द्वारा सूचनमात्र है। सूक्ष्म के भाव को सौक्ष्म्य कहते हैं याने सूक्ष्मता अर्थात सूक्ष्मपना होना यह पदार्थ के गुण की पर्याय नहीं किन्तु यह प्रदेश में ही पायी जाती है। कभी प्रदेशों का इस रूप से परिणमन हो कि वह सूक्ष्म हो जाये तो प्रदेश परिणमन होने के कारण सूक्ष्मता पुद्गल की द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। स्थूलपना, यह भी पुद्गल द्रव्य की द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। यहाँ निरुक्ति होती है स्थूलयते परिवृंहयति इति स्थूलः, जो सहज मोटा हो उसे स्थूल कहते हैं। और स्थूल के भाव को स्थौल्य कहते हैं। यह स्थूलपना प्रकट ही समझ में आ रहा है कि द्रव्य के प्रदेशों का परिणमन है। पुद्गल में प्रदेश शब्द कहने से परमाणुओं का अर्थ लेना चाहिये। अनेक परमाणु इस रूप से परिणमें कि वह वस्तु मोटा (स्थूल) हो जाये तो वह कहलाता है स्थूलपना।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संस्थान और भेद शब्द का निरुक्त्यर्थ—संस्थान आकार का नाम है। इसकी निरुक्ति है संतिष्ठते इति संस्थानं अथवा संस्थीयते अनेन इति संस्थानं अथवा भावसाधन में संस्थिति: इति संस्थानं, जो ठहरता है, वह संस्थान है। यह बात आकार में पायी जाती है। अनेक पदार्थों को जो कुछ रहते हुये, ठहरते हुये देख पा रहे हैं वे आकार रूप से देखे जा रहे हैं। तो संस्थान तो आकार प्रदेश का ही परिणमन है। अनेक प्रदेश किस प्रकार से फैले हैं उन परमाणुओं का किस तरह से विस्तार बना है वही कहलाता है आकार। तो आकार भी पुद्गल की पर्याय है, द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। भेद अर्थात भेदना, मिली हुई चीजों के खण्ड करने का नाम पर्याय है, इनको निरुक्ति है भिनत्ति भिद्यते भेदनमात्रं व भेद:, भेद होना या जो भेद किया जाये, जो भेद कर डाले वह भेद कहलाता है। भेद भी पुद्गल स्कन्धों में प्रदेशों का हुआ, परमाणुओं का हुआ। अनेक परमाणु मिलकर स्कन्ध बने हुये थे उनका बिलगाव हो गया, यही भेद कहलाया। तो यह भेद नामक पर्याय भी पुद्गल की द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है, क्योंकि यह प्रदेशों में प्रकट हुई है।

तम: और छाया शब्द का निरुक्त्यर्थ—अन्धकार के पर्याय का यहाँ शब्द दिया है तम: अर्थात अन्धकार उसका तम: शब्द बना है तमु धातु से, जिसका अर्थ है ताम्यति अथवा आत्मा+दम्यते अनेन अथवा तमनमात्रं तम:, अशुभ कर्मोदय से जो आत्मा को तम दे, जो खिन्न करदे, अभिभूत कर दे उसे तम कहते हैं, या जिसके द्वारा पदार्थ तिरस्कृत हो जाये, ढक जाये, लुप्त सा हो जाये उसको तम कहते हैं। अन्धकार प्राय: इस जीव को प्रिय नहीं है। अन्धकार में यह जीव राजी भी नहीं रहता। इस कारण से इसका नाम तम रखा गया है। यह अन्धकार पुद्गल की द्रव्य पर्यायहै। अर्थात ये ही सब प्रदेश जो अभी प्रकाश रूप से परिणम रहे थे वे ही कारण पाकर प्रकाश परिणमन को छोड़कर अन्धकार परिणमन रूप हो गये। तो यह बात प्रदेशों में ही तो हुई, इस कारण इसे कहते हैं द्रव्य व्यञ्जन पर्याय। छाया—जैसे पेड़ की छाया, मनुष्य की छाया। यह छाया एक तरह की एक नई प्रतिमूर्ति है। पृथ्वी आदिक घन परिणामी के सम्बन्ध से देहादिक पर प्रकाश का आक्रमण बनने से उसी के समान आकार द्वारा जो आत्मा को दो रूप करदे वह छाया है। यहाँ आत्मा से मतलब उस मूर्ति से है, उस देह से है, जिसकी प्रतिमूर्ति हुई है उसे कहते हैं छाया। छाया की निष्पत्ति होती किस तरह है कि प्रकाश में कोई पदार्थ रखा है, या कोई पुरुष ही खड़ा है और उस प्रकाश के निमित्त-भूत पदार्थ और उस मनुष्य के बीच में कोई कपड़ा या पाटिया वगैरह आड़े आ जायें तब तो छाया नहीं होती, किन्तु उस देह पर प्रकाश पड़ने से उसके उत्तर की ओर जो पृथ्वी आदिक घन पदार्थ पड़े हैं वे उस आकार रूप परिणम जाते हैं। तो मानो वहाँ दो से बन गये, एक खड़ा हुआ पुरुष और एक छाया का बना हुआ पुरुष। तो छाया शब्द में जो धातु है उस धातु से यह अर्थ ध्वनित होता कि वहाँ मानो दो से बन गये। यह छिदिर् द्वैधी करने धातु से बनता है जिसकी निरुक्ति है छिनत्ति आत्मानं इति छाया।

आतप और उद्योत शब्द के निरुक्त्यर्थ—आतप—असाता वेदनीय के उदय से जो आत्मा को सब ओर से तपाये अथवा जिसके द्वारा तपा जाये या तपनमात्र आतप कहलाता है। इसकी निरुक्ति इस प्रकार है—आनयति आत्मानं अथवा आतप्यते अनेन अथवा आतपनमात्रं इति आतप:। आतपन द्रव्य पर होता है. वह प्रदेशों पर ही तो होता है, गुणों में नहीं होता, इस कारण आतप गुण पर्याय नहीं है किन्तु द्रव्य पर्याय है, और यह आतप पुद्गल स्कन्ध की द्रव्य पर्याय है। उद्योत जो उद्योत करे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अथवा जिसके द्वारा उद्योत किया जाये या उद्योतनमात्र उद्योत कहलाता है। उद्योतन शीतल प्रकाश को कहते हैं। इसका निरुक्ति अर्थ यह है कि जो निरावरण उद्योत करे, निरावरणं उद्योतयति अथवा उद्योत्यते अनेन अथवा उद्योतनमात्रं इति उद्योतः। ये सब निरुक्तियाँ कर्तृसाधन, करणसाधन व भावसाधन की दृष्टि से की गई हैं। उद्योत अर्थात शीतल प्रकाश द्रव्य पर हुआ है वह प्रदेशों पर हुआ है गुणों में नहीं, इस कारण उद्योत पुद्गल स्कन्ध की द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है।

शब्द के भेद प्रभेद—अब इस सूत्र में सर्वप्रथम कहे गये शब्द के सम्बन्ध से कुछ विवरण करते हैं। शब्द दो प्रकार का होता है—(१) एक भाषा रूप और एक अभाषात्मक याने भाषा से विपरीत। भाषात्मक शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक अक्षरीकृत दूसरे जो अक्षरीकृत नहीं हो। अक्षरीकृत शब्द शास्त्र को प्रकट करने वाला है और वे शब्द संस्कृत भाषा हैं तो आर्य पुरुषों में व्यवहार के कारण बनते हैं, और यदि संस्कृत से विपरीत भाषा में है तो वे म्लेच्छजनों के व्यवहार के कारण बनते हैं। अब जो अनक्षरीकृत भाषात्मक शब्द हैं अर्थात अवर्णात्मक शब्द हैं जिनमें वर्ण जाहिर नहीं होते वे दो इन्द्रिय आदिक जीवों के हैं और उनके कुछ ज्ञान का या उनके भाव का अन्दाजा होता है। तो ये भाषात्मक शब्द सभी प्रायोगिक हैं। जिह्वा आदिक स्थानों से प्रयोग किया गया है। अब जो अभाषात्मक शब्द हैं वे दो प्रकार के हैं—(१) प्रायोगिक और, (२) वैश्रसिक। प्रायोगिक का अर्थ है जो किसी वस्तुओं के प्रयोग से संयोग वियोग से कराया जाता है वह प्रायोगिक है, और वैश्रसिक का अर्थ है कि जो किसी पुरुष आदिक के द्वारा प्रयोग तो किया नहीं जाता, किन्तु सहज ही संयोग वियोग होने से शब्द बनते हैं वे वैश्रसिक हैं। वैश्रसिक शब्द के उदाहरण हैं कि मेघ आदिक के रगड़ से जो आवाज आती है तड़कना आदिक वे सब वैश्रसिक शब्द हैं। उनका कोई पुरुष प्रयोग तो कर नहीं पाता है। प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के होते हैं—(१) तत, (२) वितत, (३) घन और, (४) सुषिर। ये सब शब्द भाषात्मक नहीं हैं अर्थात किसी ने जीभ कंठ आदिक से नहीं बनाया है किन्तु अजीव पदार्थों के संयोग वियोग से ये शब्द उत्पन्न होते हैं, जिन्हें मनुष्यादिक करते हैं वे शब्द प्रायोगिक हैं और ये चार प्रकार के कहे गये हैं। तत नामक शब्द वे हैं जो चमड़े के ढोल आदिक के पीटने से निकलते हैं। वितत शब्द वे हैं जो तारों से उत्पन्न किये जाते हैं जैसे वीणा, तार, वायलन आदिक से जो उत्तम इष्ट प्रिय घोष निकलते हैं वे वितत हैं। घन शब्द घण्टा आदिक के बजाने से उत्पन्न होते हैं। सुषिर शब्द बाँसुरी शंख आदिक के निमित्त से उत्पन्न होते हैं। ये सब शब्द पुद्गल द्रव्य की द्रव्य व्यञ्जन पर्यायें हैं यह प्रसिद्धि की जा रही है।

शब्द के सम्बन्ध में कुछ कल्पित धारणाएं और उनका निरसन—कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि शब्द आकाश का गुण है, पर यह बात युक्त नहीं होती क्योंकि शब्द का टेप आदिक में भरना, भीट आदिक से अभिघात होना, बिजली आदिक के तारों से उसे बढ़ी आवाज में फेंकना ये सब पुद्गल में ही हो सकते हैं। आकाश तो अमूर्तिक है, उस पर यह प्रयोग नहीं चल सकता। कुछ लोगों को यह संदेह है कि शब्द ध्वनियाँ जो क्षणिक हैं और क्रम से उत्पन्न होती हैं और प्रत्येक शब्द केवल अपनी ही ध्वनि में अपने ही स्वरूप को बता पाता है। तो वे शब्द मिलकर भी किसी अन्य अर्थ को बता नहीं सकते। जैसे किसी ने कमल शब्द कहा तो पहले क फिर म फिर ल बोला गया। जिस समय क बोला तो लोगों ने क समझ लिया और वह ध्वनि खतम हो गई, फिर म बोला गया तो म समझ गया, ल बोलने पर ल समझा गया। अब कोई तालाब में उत्पन्न होने वाले कमल को इन शब्दों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से कहे—यह कैसे समझा जाये ? यदि इन शब्दों में यह सामर्थ्य है कि वे किसी पदार्थ का संकेत कर सकते हैं तो यह सामर्थ्य प्रत्येक वर्णों में हो गई, फिर प्रत्येक वर्णों से ही पदार्थ का ज्ञान हो जाय और जब एक वर्ण के द्वारा पदार्थ का बोध हो जायेगा तो अन्य वर्णों का बोलना या ग्रहण करना निरर्थक हो जायेगा। तोये ध्वनियाँ क्रम से उत्पन्न होती हैं। इन ध्वनियों का एक साथ मिल जाना यह सम्भव ही नहीं हो सकता। जब वे ध्वनियाँ क्रम से निकलती हैं, एक साथ हो नहीं सकतीं तो उनसे अर्थ का ज्ञान कैसे हो सकेगा। इस कारण उन ध्वनियों से प्रकट होने वाले शब्द अर्थ के प्रतिपादन में समर्थ नहीं। अतीन्द्रिय निरवयव निष्क्रिय कोई शब्द स्फोट स्वीकार करना चाहिये। ऐसा कोई संदेह करते हैं या मानते हैं, उनका यह मानना युक्त नहीं है, क्योंकि ध्वनि और स्फोट में कोई सम्बन्ध नहीं। जिस शब्द स्फोट को वे व्यंग्य मानते हैं अर्थात ये प्रकट किये जा सकते हैं वे क्या अपने स्वरूप में हैं या नहीं ? यदि वे अपने स्वरूप में हैं, तो यह ध्वनि निकलने से पहिले या बाद में वह स्फोट क्यों नहीं पाया जाता, आदिक विचार करने पर यह मानना चाहिये कि शब्द ध्वनि रूप हैं और जिन भाषा वर्गणाओं से ये शब्द निकले हैं उनके मूलभूत अणु नित्य है और ध्वनि अनित्य है। वे पुद्गल द्रव्य की दृष्टि से नित्य हैं और शब्द पर्याय की दृष्टि से अनित्य हैं।

वैश्रसिक बन्ध का विवरण – बंध नामक जो दूसरी द्रव्य व्यञ्जन पर्याय कही गई है वह बंध दो प्रकार का है—(१) प्रायोगिक और, (२) वैश्रसिक। जो किन्हीं पुरुषों के द्वारा प्रयोग करके बंधन किया जाता है वह प्रायोगिक है और जो सुगम स्वयं बन्धन बन जाता है वह वैश्रसिक है। वैश्रसिक बन्ध दो प्रकार का है-(१) आदिमान और, (२) अनादिमान। स्निग्ध रुक्ष गुण के निमित्त से बिजली, उल्का, जलधारा, इन्द्रधनुष आदिक हो जाना यह बन्ध तो आदिमान है। और जो अनादि वैश्रसिक बन्ध है वह ९ प्रकार का है-(१) धर्मास्तिकाय बन्ध अर्थात जितने धर्मास्तिकाय द्रव्य हैं उस विस्तार में स्वयं वह अनादि से बना हुआ है और वह उसका प्रायोगिक रूप है बिखर नहीं सकता, (२) धर्मास्तिकाय देश बन्ध, (३) धर्मास्तिकाय प्रदेश बन्ध, (४) अधर्मास्तिककाय बन्ध, (५) अधर्मास्तिकाय देश बन्ध; (६) अधर्मास्तिकाय प्रदेश बन्ध, (७) आकाश अस्तिकाय बन्ध, (८) आकाश अस्तिकाय देश बन्ध, (९) आकाश धर्मास्तिकाय प्रदेश बन्ध। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य ये तीनों नित्य अवस्थित द्रव्य हैं। और जितने विस्तार में है उतने ही विस्तार में सतत रहते हैं। यहाँ जो प्रत्येक अस्तिकाय में तीन तीन बन्ध भेद किये गये हैं सो बात तो एक ही है द्रव्य अखण्ड है किन्तु दृष्टि और कल्पना के अनुसार सम्पूर्ण वस्तु को देखना वह सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय है। उसका आधा देश कहलाता है और उस देश का आधा प्रदेश कहलाता है। अथवा और भाग भी प्रदेश कहलाते हैं। इसमें यद्यपि विछोह कभी नहीं होता और इस कारण से बन्ध भी क्या कहा जाये, लेकिय ये सब इतने विस्तार में हैं इस दृष्टि से निरखकर ये अनादि वैश्रसिक बन्ध कहलाते हैं। काल द्रव्य में बन्ध नहीं होता। हाँ वह आकाश के एक एक प्रदेश पर एक एक कालद्रव्य है और जहाँ है वहीं ही सदा रहता है, ऐसा वैश्रसिक सम्बन्ध अनादि है। जीव के भी जितने प्रदेश हैं उनका यद्यपि संकोच विस्तार हुआ करता है ऐसा स्वभाव है तो भी परस्पर वियोग नहीं देखा जाता। इस दृष्टि से वह भी अनादि बन्ध है इसी तरह नाना जीवों की दृष्टि से देखा जाये तो यह सारा लोक अनन्त जीवों से खचित है और पुद्गल द्रव्यों में भी सामान्यतया स्कंधों की दृष्टि से देखें तो वह भी खचित है, इस कारण वहाँ भी अनादि बन्ध कह सकते हैं, पर व्यक्तिगत रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु कोई जीव कहीं भी है, कहीं जन्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिया, कहीं विहार करता है पर कहीं भी विहार करे, जीव का खाली क्षेत्र में तो विहार होता नहीं। यों मनुष्य देव आदिक जीवों की अपेक्षा कहा गया है। इस तरह सभी द्रव्यों में बन्ध सम्भव है, पर यहाँ प्रकरण है पुद्गल द्रव्य का। यह बन्ध पुद्गल द्रव्य में घटित करना है अभी ये सब वैश्रसिक बन्ध कहे गये। विश्रसा का अर्थ है स्वभाव, जो स्वतः हो वह वैश्रसिक है याने स्वाभाविक।

प्रायोगिक बन्ध का विवरण—प्रायोगिक का अर्थ है किसी जीव के द्वारा प्रयोग करके जो विधि बने अर्थात शरीर, वचन, और मन के संयोग से जो बन्धन बनाया जाय वह प्रायोगिक है। और प्रायोगिक बन्धन दो प्रकार का होता है। एक तो अजीव और अजीव में ही बन्धन होना, दूसरा जीव और अजीव में बन्धन होना। जैसे काष्ठ में लाख का बन्धन किया, दो कागजों को गोंद से चिपकाया आदिक अजीव अजीव में जो बन्धन किया जाता है वह है अजीव विषयक बन्धन। कर्मों में भी परस्पर ही बन्ध होता है और वह है अजीव विषयक बन्धन। पहले से सत्ता में स्थित कार्माण वर्गणा में नवीन कार्माण वर्गणायें बंध जाती हैं तो वह भी वस्तुतः अजीव अजीव में ही बन्धन हुआ। शरीर में भी शरीर की ही वर्गणाओं का बन्धन होता है। वे वर्गणायें भी अजीव हैं वह शरीर विषयक बंधन है। ये सब बन्धन जो प्रयोग में आते हैं ये पांच प्रकार के हैं। शरीर बन्ध की दृष्टि से मूल भेद तो औदारिक वैक्रियक आहारक तैजस और कार्माण इस प्रकार पांच हैं, पर इन्हीं को संयोगज ढंग बनाकर भेद बनते हैं १५। औदारिक शरीर नोकर्म का अन्य औदारिक शरीर का नोकर्म से बन्ध होने पर (१) पहला भंग बना औदारिक औदारिक शरीर नो कर्म बन्ध, (२) दूसरा भंग औदारिक और तैजस शरीर के परस्पर सम्बन्ध से बनता है, औदारिक तैजस शरीर नोकर्म बन्ध। (३) तीसरा भंग बनता है, औदारिक कार्माण शरीर बन्ध और (४) चौथा औदारिक तैजस कार्माण शरीर बन्ध यहां तीन का सम्बन्ध लिया गया है। (५) ५वां बनता है वैक्रियक वैक्रियक शरीर बन्ध, (६) छठा होता है, वैक्रियक तैजस शरीर बन्ध (७) सातवाँ होता है वैक्रियक कार्माण शरीर बन्ध और (८)८वाँ हुआ वैक्रियक तैजस कार्माण शरीर बन्ध (९) नववां हुआ आहारक आहारक शरीर बन्ध (१०) दसवां हुआ आहारक तैजस शरीर बन्ध (११) ग्यारहवाँ हुआ आहारक कार्माण शरीर बन्ध (१२) बारहवाँ हुआ आहारक तैजस कार्माण शरीर बन्ध (१३) तेरहवाँ होता है तैजस तैजस शरीर बन्ध (१४) चौदहवाँ हुआ तैजस कार्माण शरीर बन्ध और (१५) हुआ कार्माण कार्माण शरीर बन्ध। जैसे कि हम आप मनुष्यों की जो आज स्थिति है, जो शरीर बन्धन हैं। उसमें औदारिक तैजस, कार्माण इन तीन शरीरों का बन्धन है। किसी स्थिति में कुछ दृष्टि लेकर दो शरीर का सम्बन्ध बनाया, इस तरह शरीर के आहार वर्गणाओं का परस्पर में एक दूसरे से बन्धन होना यह शरीर बन्ध कहलाता है।

बन्ध के विषय में स्फुट ज्ञातव्य—अब इसके अतिरिक्त शारीरिक बन्ध के विषय में देखिये—बन्धन है उस दृष्टि से दो विकल्प बनते हैं कि यह शरीर बन्ध कोई अनादिमान है कोई आदिमान है। जैसे जीव असंख्यात प्रदेशी है तो उन असंख्यात प्रदेशों में बीच के प्रदेश ८ बैठते हैं। कोई संख्या समान है चारों तरफ से समान है तो उसका बीच एक न बैठेगा। जैसे संख्या आठ है तो उसके बीच एक नहीं बैठ सकता। ७ संख्या का बीच एक हो जाएगा क्योंकि चौथा, तीन एक तरफ तीन एक तरफ किन्तु जो समान संख्या होगी वहाँ बीच एक नहीं हो सकता। चारों ओर से बीच देखते हैं तो जीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के मध्य प्रदेश ८ रहेंगे। वे ८ मध्य प्रदेश ऊपर नीचे ४-४ रूप से स्थित हैं और वे सदा इस ही तरह रहते हैं। तो यह हो गया अनादि बन्ध, पर जीवों के अन्य प्रदेशों में संकोचविस्तार चलता रहता है। इस संकोच विस्तार निमित्त कारण कर्मविपाक है, पर संकोच तो जीवों के प्रदेशों का हुआ, तो यह सकोच विस्ताररूप जो बन्ध है वह आदिमान बन्ध है। यहाँ कर्म और नो कर्म के सम्बन्ध में यह समझना कि जो ज्ञानावरणादिक कर्म हैं वे आत्मा को विकृत परतन्त्र बनाने का मूल कारण हैं और कर्म के उदय से होने वाले जो औदारिक शरीर आदिक हैं, जो कि आत्मा के सुख दुःख में बाधक होते हैं वे नोकर्म कहलाते हैं। कर्म और नोकर्म में स्वरूप से भेद हैं, स्थिति से भेद है। नोकर्म की स्थिति तो आयु के अनुसार है और कर्मों की स्थिति शास्त्रों में जुदी बताई ही गई हैं वह सागरों पर्यन्त है। औदारिक शरीर अधिक से अधिक तीन पल्य तक टिक सकता है। वैक्रियक शरीर ३३ सागर तक टिक सकता है, आहारक शरीर केवल अन्तर्मुहूर्त रहता है। तैजस शरीर ६६ सागर प्रमाण टिकता है। कर्मों की स्थिति करोड़ों सागर तक हो जाती है। तो बन्ध के प्रकरण में ये सारे बन्धन दृष्टि में आ जाते हैं। कर्म का कर्म से बन्धन, शरीर का शरीर से बन्धन, जीव का कर्म शरीर से बन्धन, ये सभी प्रकार के बन्ध हुआ करते हैं, पर यहाँ बन्ध पुद्गल द्रव्य का ही दिखाया जा रहा है। ये पुद्गल स्कंध की द्रव्य व्यञ्जना पर्यायें हैं।

सौक्ष्म्य स्थौल्य संस्थान के भेद पर्याय के विषय में स्फुट ज्ञातव्य—तीसरी और चौथी पर्याय बताई है सूत्र में सूक्ष्मता और स्थूलपना। ये दोनों ही २-२ प्रकार के हैं। एक अन्तिम दूसरा आपेक्षिक। अन्तिम सूक्ष्मपना परमाणु में है, आपेक्षिक सूक्ष्मपना बेर, आँवला, आम वगैरह में है। जहाँ अपेक्षा से जाना जाता कि यह इससे सूक्ष्म है, इस प्रकार स्थूलपना तो महास्कंध में है सारा लोक, उससे बड़ा और क्या। आपेक्षिक स्थूलपना बेर आँवला आदिक में पाया जाता है। जब मोटाई की ओर दृष्टि होती है तो आपेक्षिक स्थूलता होती है। जब सूक्ष्मता की ओर दृष्टि होती है तो आपेक्षिक सूक्ष्मता विदित होती है। संस्थान दो प्रकार का है—(१) इत्थं लक्षण (२) अनित्थं लक्षण। इत्थं लक्षण का अर्थ है कि जिसके बारे में बताया जा सकता, मुख से कहा जा सकता कि यह ऐसे आकार का है। जैसे गोल, तिकोण, चौकोण, लम्बा आदिक किसी भी प्रकार का आकार बता सके, वह आकार तो इत्थं लक्षण है और जिसका आकार बताया न जा सके किंतु है, दिखता है वह आकार, अनित्थं लक्षण है। जैसे मेघों का आकार। मेघ ऊपर दिखते हैं, उड़ते हैं, उनका क्या आकार बताया जा सकता? भिन्न-२ ढग के हुआ करते हैं। इस प्रकार ये आकार २ प्रकारों में पाये जाते हैं। पुद्गल द्रव्य का एक द्रव्य पर्याय है भेद याने मिले हुये में से अलग हो जाना। यह भेद ६ प्रकार का है—(१) पहला भेद है उत्कर जैसे काठ को करोंती आदिक से चीरकर टुकड़े किये जाते हैं वह उत्कर नाम का भेद है। (२) दूसरा भेद है चूर्ण। जैसे जवा गेहूँ आदिक अन्नों का आटा सतुआ आदिक रूप से चूर्ण किया जाता है वह है चूर्ण नाम का भेद। (३) तीसरे भेद का नाम है खण्ड। जैसे घड़े की खपरिया बन जाती, अटपट अनेक टुकड़े हो जाते, वे खण्ड कहलाते हैं। (४) चौथा भेद है चूर्णिका। मूंग उड़द जैसी दालों का जो खण्ड होता है, दाल बनती है। कुछ चूरा भी निकलता है वह चूर्णिका कहलाती है। (५) पांचवें भेद का नाम है प्रतर। जैसे मेघ पटल हैं और उसमें ही कुछ मेघ टूटकर दूसरी ओर चले गये तो ऐसा जो बादलों का बिखराव हो जाता है वह कहलाता है प्रतर। (६) छठवाँ भेद है अणुचटन। जैसेकि कोई तपा हुआ लोहे का पिण्ड हो और उस पर घन मारे जाते हैं कोई स्फुलिंग से निकलते हैं या कभी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आग कोयला में से चटकर स्फुलिङ्ग बनता है वह अणु चटन नाम का भेद है।

अन्धकार व छाया आतप व उद्योत पर्याय के विषय में स्फुट ज्ञातव्य—पुद्गल द्रव्य की एक द्रव्य व्यञ्जन पर्याय अंधकार कही गई थी। अंधकार नाम है उसका जो दृष्टि का प्रतिबन्धक हो, जिसमें देख न सके और इस अंधकार का अपहरण करने वाले कोई प्रकाशक पदार्थ ही होते हैं। यह अंधकार वस्तु के प्रदेश का ही परिणमन है। प्रकाशमान पदार्थ का सान्निध्य पाकर वस्तु प्रकाश रूप में थी। प्रकाशक का अभाव होने पर वस्तु अंधकार रूप में परिणम गई तो यह अंधकार इसी कारण द्रव्य पर्याय कहलाता है। छाया भी पुद्गल की द्रव्य पर्याय है। छाया निष्पन्न कैसे होती कि जहां प्रकाश हो और उस प्रकाश का कोई आवरण आ जाय तो जो आवरण रूप है उसका आकार उस सामने की भूमि छाया रूप हो जाती है। जैसे कोई मनुष्य दीपक के आगे खड़ा हो गया था पुरुष खड़ा था, उसके एक ओर दीपक जला दिया तो उस दीपक प्रकाश का आवरण वह शरीर बन गया और उस शरीर की छाया पड़ती है। छाया दो प्रकार की होती है (१) उसी वर्णादिक के विकार वाली (२) प्रतिबन्ध मात्र। जैसे दर्पण में या दर्पण जैसे कोई भी निर्मल पदार्थ में मुख आदिक की जो छाया पड़ती है सो उस ही वर्णादिक रूप परिणति होती है। बाल काले हैं तो वे काले ही दिखेंगे। रूप जैसा है वैसा ही दिखेगा। जिस रंग का कपड़ा है उस रंग का ही दिखेगा, तो यह तो है वर्णादि विकार वाली छाया और जो प्रकाश के आवरण मात्र से जो भूमि पर छाया पड़ती है वह केवल एक प्रतिबन्ध मात्र है। उसका केवल आकार रहता है। वर्ण नहीं आता। चाहे लाल रंग का कपड़ा हो, किसी रंग की वस्तु हो उसकी छाया में रंग न आयेगा। केवल एक उतना अंधकार जैसा होगा। यहाँ एक बात जानना चाहिये कि छाया जो पड़ती है सो वह विपरीत मुख वाली पड़ती है। जैसे कोई मनुष्य पूरब दिशा की ओर मुख करके खड़ा हो और सामने दर्पण को देखे तो दर्पण का प्रतिबिम्ब पूरब की ओर मुख वाला न रहेगा। अगर ऐसा होता तो प्रतिबिम्ब में मुख दिख ही न सकता था। प्रतिबिम्ब में मुख पश्चिम की ओर हो जाता है। इसी प्रकार सभी आकार प्रकार विपरीत दिशा में छाया रूप में रहते हैं। ऐसा क्यों होता है? यह एक निर्मल दर्पण आदिक पदार्थ का परिणमन ही इस प्रकार है। यहाँ एक दार्शनिक शंका करता है कि दर्पण देखने से कहीं दर्पण की छाया नहीं दिखी, किंतु देखने वाले पुरुष के नेत्र से किरणें निकलीं और दर्पण से टक्कर खाकर वापिस आती हैं तो वे ही वापिस आयी हुई किरणें सीधे अपना मुख देख लेती हैं। दर्पण में कोई प्रतिबिम्ब नहीं होता। इस शंका के समाधान में प्रथम तो यह कहना है कि यदि वे किरणें वापिस आयें और वे अपना सही मुख देख लें तो वह मुख विपरीत न दिखना चाहिये। जिस दिशा में है उसी दिशा में रहते हुए दिखना चाहिए। पर प्रतिबिम्ब वाले दर्पण में तो मुख दूसरी ओर दिखता है। मनुष्य का मुख पूर्व में है। दर्पण में मुख पश्चिम को हो जाता है, तो मुख दर्पण में ही दर्पण के ढंग से, दर्पण के परिणमन विशेष से प्रतिबिम्ब रूप हुआ है, और यदि किरणें टक्कर खाकर लौटें और वे अपना मुख देख लें तो भींट आदिक से ये नेत्र की किरणें टक्कर खाकर क्यों नहीं अपने को देख लेतीं, क्योंकि नेत्र की किरणों का आघात तो भींट से भी हो सकता है। तो इससे सिद्ध होता है कि नेत्र से किरणें नहीं निकलतीं किंतु ये नेत्र तो बिना भिड़े ही दूर ठहरे हुए पदार्थ को देखते हैं। तो पुद्गल द्रव्य की द्रव्य व्यञ्जनपर्याय है छाया। जो प्रतिबिम्ब वाले दर्पण में छाया हुई है वह दर्पण के प्रदेशों का पर्याय है। जो छाया का प्रतिबन्ध रूप है वह जमीन पर आदि पर हुई है वह जमीन आदि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का परिणमन है आतप भी पुद्‌गल द्रव्य की द्रव्य पर्याय है। यह सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश रूप पुद्‌गल परिणाम होता है। इसी को ही आतप कहते हैं। उद्योत—चंद्रमणि, खद्योत, जुगुनू आदिक का प्रकाश उद्योत कहलाता है। उद्योत उष्ण प्रकाशरूप नहीं होता, किंतु मात्र एक प्रकाश ही उत्पन्न करता है।

क्रिया रूप पर्यायों का कथन—यहाँ एक शंकाकार कहता है कि जब पुद्‌गल द्रव्य का परिणमन इस सूत्र में बताया जा रहा है और वह भी प्रदेश की मुख्यता से तो क्रिया भी तो पुद्‌गल द्रव्य का परिणमन है। उसका यहाँ नाम क्यों नहीं लिया गया? इसका उत्तर यह है कि इस सम्बन्ध में पहले ही संकेत दे दिया था। जब धर्म अधर्म द्रव्य को निष्क्रिय बतला रहे थे तो स्वयं ही यह बात सिद्ध सो गई थी कि पुद्‌गल द्रव्य निष्क्रिय नहीं है। उसमें क्रिया होती है। कोई यहाँ यह शंका न करे कि जब धर्म अधर्म आकाश इन ३ द्रव्यों में क्रिया का निषेध किया, बताया कि ये निष्क्रिय हैं इनमें क्रिया नहीं है और उससे यह अर्थ निकाला गया कि पुद्‌गल में क्रिया होती है। तो यह भी अर्थ निकाल लेना चाहिये कि काल द्रव्य में भी क्रिया होती है। यह शंका यों न करना कि पंचम अध्याय के कुछ पहले प्रकरण में जिन जिनका नाम दिया गया उनही में से छटनी की गई है। सूत्र कहा गया था—अजीवकाया: धर्माधर्माकाश पुद्‌गला:। धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्‌गल ४ की ही चर्चा थी और उस प्रसंग में पुद्‌गल ही तो रहा। तो उससे पुद्‌गल में ही क्रियावानपने की सिद्धि हुई। यदि काल को सक्रिय मानना यहाँ इष्ट होता तो जहाँ द्रव्याणि व जीवा: इतना शब्द दिया था वहाँ काल शब्द भी दे देते, पर काल वहाँ न देकर जो इस अध्याय के अनेक सूत्र निकलने के बाद कालश्च कहा जायगा, करीब-२ अन्त में तो उससे काल द्रव्य की बात सबसे निराली ही समझी जाती है।

क्रियाओं की दशविधता—क्रिया १० प्रकार की होती हैं। (१) पहली क्रिया है प्रयोग गति जैसे वाण, चक्र आदि प्रयोग किये जाते हैं या कोई पत्थर आदिक फेंक दिया, यह सब प्रयोगगति कहलाती है। (२) कोई क्रिया बंधाभावगतिरूप होती है। जैसे तेदू के बीज, एरण्ड के बीज। इनके ऊपर का छिलका जब फटकता है तो बीज की अपने आप गति हो जाती है। (३) कोई क्रिया छिन्न गति नाम की है। जैसे मृदंग, भेरी, शंख आदिक के शब्द जो दूर तक जाते हैं वह छिन्नगति कहलाती है। (४) एक क्रिया अभिघात गति नाम की है। जैसे गेंद को पटक दिया तो पहली बार जो गेंद फेंका वह तो प्रयोगगति में आया मगर जमीन से, भींट से टक्कर खाकर जो गति करती है वह अभिघात गति रूप क्रिया कहलाती है। (५) एक क्रिया है अवगाहन गति। जल में नौका आदिक तैरते हुए जाते हैं वह अवगाहन गति क्रिया कहलाती है। (६) एक क्रिया है गुरुत्वगति। जो वजन दार पदार्थ है ईंट पत्थर आदिक उनका जो नीचे की ओर गमन है वह गुरुत्व गति कहलाती है। (७) एक क्रिया है लघुगति। जो अत्यन्त हल्के हैं तूमड़ी, रुई आदिक जो कि हवा से उड़ जायें उनकी गति लघुगति कहलाती है। (८) एकगति है संचारगति। जैसे पानी पर तैल गिर गया तो उस ही पर संचरण करता यहाँ वहाँ डोलता है। (९) एक गति है संयोग गति। संयोग से जो गति होती, जैसे वायु के संयोग से मेघ की गति होती, हाथी के संयोग से रथ की गति होती, गाड़ी में बैल जुते हों तो गाड़ी भी चलती है। हाथ के संयोग से मूसल आदिक की भी गति होती है। कोई गेंद का बल्ला हाथ से चला रहा है या कोई मुद्‌गर घुमा रहा है तो हाथ के संयोग से गति है। (१०) एक गति है स्वभावगति। जैसे ज्योतिषी देवों की गति, परमाणु का गमन, मुक्त जीव का गमन, हवा और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अग्नि का गमन। अग्नि में जो ज्वाला चलती है वह उसके स्वभाव से है। इन्हीं सब क्रियाओं में अन्तर्गत अनेक क्रियायें हैं। एक क्रिया है तिर्यक्गति। यह वायु में होती है, वायु कभी सीधी गमन नहीं करती, किन्तु यथा तथा किसी भी प्रकार तिरछी गमन करती है। एक क्रिया है ऊर्द्धगति। जैसे अग्नि की ज्वाला का गमन ऊपर ही होता है। हाँ कोई कारण मिला, हवा मिले या किसी घन द्रव्य का रुकाव हो जाय तो वह ज्वाला अन्य दिशाओं में जाती है किन्तु स्वयंअपने आप ज्वाला ऊपर ही चलती है। एक गति है नियतिगति। जैसे पम्प से हवा भरना, किसी वस्त्रादिक से वायु चलाना यह नियत गति है। एक गति है अनियत गति। परमाणुओं की गति अनियत है, मुक्त जीवों की गति ऊर्द्धगति है। ज्योतिषों का नृलोक में नित्य भ्रमण है ऐसी अनेक प्रकार की क्रियायें हैं, वे सभी द्रव्य व्यञ्जन पर्याय हैं, क्योंकि वे सब क्रियायें प्रदेशों में ही हुई हैं।

पर्यायों का द्रव्य से अन्यत्व व अनन्यत्व का प्रकाशन - यहां एक शंका होती है कि इस सूत्र में मतु प्रत्यय लगाया गया है और यह प्रत्यय लगता है भिन्न चीजों के साथ जैसे धनवान, छत्ता वाला। ऐसे जो पदार्थ जुदे हों उनके साथ यह प्रत्यय लगता है तो क्या ये पर्यायें पदार्थ से भिन्न चीज हैं? यदि भिन्न हों तब तो ठीक है, अगर नहीं है भिन्न तो यहाँ मतुप् प्रत्यय कैसे लगाया? भिन्न हो तो यह है नहीं, क्योंकि इससे अलग कोई पुद्गल नहीं दिखता। इस शंका का समाधान यह है कि यह प्रत्यय अभिन्न अर्थ में भी लगता है। जैसे ज्ञानवान। ज्ञान आत्मा से जुदी चीज नहीं है फिर भी प्रयोजनवश स्वरूप से कुछ निराला परखकर वान शब्द लगा दिया है। जैसे सारवान लकड़ी तो लकड़ी का जो सार है वह अलग चीज नहीं है फिर भी वान शब्द लगा है। या आत्मवान पुरुष, पुरुष अलग चीज न होने पर भी यहाँ प्रत्यय लगा है। इसी तरह ये पर्यायें पुद्गल से अलग न होने पर भी यहाँ मतुप् प्रत्यय लग सकता है। और दूसरी बात यह है कि पर्याय का लक्षण है अनित्यपना और पुद्गल द्रव्य का लक्षण है नित्यपना। द्रव्य दृष्टि से पुद्गल नित्य है, पर्याय दृष्टि से चूंकि ये पर्यायें सदा नहीं रहतीं इस कारण अनित्य हैं। तो कुछ तो भेद पाया गया और इस भेद दृष्टि में उन पर्यायों को जुदा परख लिया। फिर तो मतुप् प्रत्यय लगाने में शंकाकार के भाव के अनुसार भी कोई शंका न रहना चाहिये।

पुद्गल के चिह्नों को बताने के लिए पृथक् दो सूत्र कहे जाने के प्रयोजन—यहां शंका होती है कि इस सूत्र से पहले सूत्र में कहा गया कि स्पर्श, रस गन्ध, वर्ण वाले पुद्गल हैं और प्रकृत सूत्र में शब्द बन्ध आदिक वाले बताया, तो इन दोनों सूत्रों को एक ही क्यों नहीं कर दिया गया? इसका उत्तर यह है कि सूत्रों को जुदा-जुदा कहने का कोई रहस्य है, और इससे अनेक बातें प्रसिद्ध होती हैं। जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण जो इससे पूर्व सूत्र में बताये हैं वे परमाणुओं के भी होते हैं। और स्कंधों के भी होते हैं, किन्तु इस सूत्र में जो शब्द बंध आदिक बताये गये हैं वे स्कंधों के ही होते हैं। अणु के नहीं होते। थोड़ा कोई यह सोच सकता है कि जो ये १० पर्यायें बताई गई हैं इनमें सूक्ष्मपना तो परमाणु में भी पाया जा सकता, पर उन्हें यह समझना चाहिए कि यहाँ जो सूक्ष्म शब्द दिया है वह आपेक्षिक है। बड़े से छोटा सूक्ष्म है। उससे छोटा हो तो वह सूक्ष्म है। और फिर स्थूलपना तो बताया ही था, वह तो स्कंध में ही होता है। स्थूल का प्रतिपक्षी होने से सूक्ष्म भी बताया गया है। तो समझना यह चाहिये कि जो आत्यंतिक सूक्ष्मता है वह तो परमाणु में है और जो आपेक्षिक सूक्ष्मता है वह स्कधों में है। इसके अतिरिक्त यह भी समझना चाहिए कि इससे पूर्व सूत्र में तो गुणों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात कही गई है और इस सूत्र में द्रव्य पर्यायों की बात कही है। इन दो सूत्रों को पृथक कहने का यह भी कारण है कि यह प्रसिद्धि करना था कि स्पर्शादिक गुणों का एक उस ही जाति में बदल होता है। जैसे स्पर्श गुण अभी कोई शीत पर्याय में है तो प्रायः शीत पर्याय में ही कम शीत अधिक शीत आदिक रूप से परिवर्तन चलेगा और कभी उष्ण रूप से भी परिवर्तन हो जाता उस पुद्गल जाति का तो भी स्पर्श जाति को छोड़ता नहीं, इसी प्रकार रस में भी प्रथम तो किसी एक रस का उसी की डिग्रियों में परिवर्तन चलेगा, कभी अन्य रस रूप भी हो तो रस रूप ही तो हुआ, रस गुण का परिणमन किसी अन्य गुण के परिणमनरूप न होगा, ऐसे ही गंध गुण का परिणमन सुगन्ध है तो प्रथम तो सुगन्ध की ही डिग्रियों में कमी बेशी होती रहेगी और कभी दुर्गन्ध रूप भी वह पुद्गल बन जाय तो गन्ध जाति का उल्लंघन नहीं किया। ऐसे ही कोई भी वर्ण वर्ण जाति का उल्लंघन करके नहीं परिणमता। वह विशेषता भी सूत्र के पृथक कहने से ज्ञात होती है। यह भी एक तथ्य है कि पूर्व सूत्र में तो लक्षण कहा गया है जो सब पुद्गलों में पाया जाता। इस सूत्र में पर्यायें कही गई हैं जो कभी किसी के होती हैं।

सूत्रोक्त च शब्द से अवशिष्ट पर्यायों का ग्रहण—यहां यह भी सोचा जा सकता कि पुद्गल के और भी तो परिणाम शेष रह गये हैं जिनका सूत्रों में उल्लेख नहीं है। जैसे लोचना, लुच जाना, अभिघात होना, दब जाना आदिक भी अनेक परिणमन हैं जो सूत्र में नहीं किए गये हैं। तो यह समझना चाहिए उन सबके सम्बन्ध में कि जो भी परिणमन और शेष रह गए हैं उनका च शब्द से ग्रहण हो जाता है। इस प्रकृत सूत्र के अन्त में च शब्द दिया है। तो जो और भी ऐसे प्रादेशिक परिणमन शेष रह गये हैं अब उनका यहां ग्रहण कर लेना चाहिये। सामान्यतया इतने वर्णन के बाद यह जिज्ञासा होती है कि जब ऐसा योग करण बताया गया है, प्रदेश का परिणमन, स्पर्शादिक गुणों का परिणमन बताया गया है वह जिसके परिणमन है वह क्या केवल परमाणु ही है अथवा स्कन्ध भी है, ऐसा उन पुद्गलों के सम्बन्ध में भेद रूप वर्णन करने के लिये सूत्र कहते हैं।

अणवः स्कन्धाश्च ॥५-२५॥

अणु और स्कन्ध पुद्गलों का निर्देशन—स्पर्श आदिक परिणाम वाले पुद्गल दो प्रकार के हैं—(१) अणु और, (२) स्कन्ध। अणु तो सबसे छोटा अविभागी द्रव्य है और स्कन्ध दो या दो से ज्यादह अणुओं के बन्ध से हुआ पिण्ड है। अणु शब्द अण धातु से बना है। जिसकी निरुक्ति है—अण्यन्ते शब्द्यन्ते इति अणु। प्रदेशमात्र में रहने वाले स्पर्श आदिक गुणों के द्वारा जो निरन्तर परिणमते रहते हैं, इस प्रकार जो कहे जाते हैं यों शब्द के जो विषय बनते हैं वे अणु कहलाते हैं। यह अणु अविभागी एक प्रदेश मात्र परमाणु है, इसी कारण प्रत्येक परमाणु प्रदेशमात्र है यही उनकी आदि है, यही मध्य है और यही अन्त है। यदि अणु का आदि मध्य अन्त कुछ और-और बने तो वह अविभागी नहीं रह सकता। ये अणु इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण में आ ही नहीं सकते। स्कन्ध शब्द बना है स्कन्धिद् धातु से। जिसका अर्थ निकलता है कि स्थूलपने से ग्रहण में रखने आदिक व्यापार में जो आ सकें उनको स्कन्ध कहते हैं। यद्यपि स्कन्ध का अर्थ यह निकलता है तो भी रूढ़ि अर्थ समझना याने कई स्कन्ध ऐसे होते हैं जो ग्रहण करने या रखने आदिक व्यापार के अयोग्य हैं, फिर भी वे स्कंध कहलाते हैं। जो दो परमाणुओं का पिण्ड है, तीन-चार आदिक संख्यात परमाणुओं का पिण्ड है, यहाँ तक कि असंख्यात परमाणुओं का जो पिण्ड है वह ग्रहण और रखने आदिक में नहीं आता। जितने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी ये स्कन्ध हम आपके व्यवहार में आ रहे हैं वे सब अनन्त परमाणुओं के पिण्ड हैं।

सूत्र में अणु और स्कन्ध इन दो शब्दों को जुदे-जुदे पद में व बहुवचन में रखने का कारण— सूत्र में अणु और स्कन्ध दोनों शब्दों में बहुवचन का प्रयोग किया गया है। सो यद्यपि समग्र पुद्गल अणु और स्कन्ध में आ गये फिर भी अणु अनेक हैं, अनन्त हैं, स्कन्ध भी अनेक हैं। तो उन जाति के आधार में अनन्त भेद वाले ये पुद्गल हैं, ऐसी सूचना के लिये इन दोनों शब्दों का बहुवचन में प्रयोग किया गया है। यहाँ कोई शंका करता है कि दो पद अलग-अलग न रखते सूत्र में और सीधा ही कह देते अणु स्कन्धाः ऐसा समास कर देते, बहुवचन भी रखा रहता तो यह लघु वचन बन जाता और जितना कम से कम वचन कहे जायें सूत्र में उतना ही उत्तम सूत्र माना जाता है। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि यहां अणु और स्कन्ध को जुदा-जुदा रखने का प्रयोजन यह है कि यह ज्ञात होवे कि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण वाले तो परमाणु हैं और शब्द बन्ध, सौक्ष्म्य आदिक जो पूर्व सूत्र में द्रव्य पर्यायें कही गई हैं वे सब स्कन्ध हैं। यद्यपि स्कन्ध की परिस्थिति में भी स्पर्श, रस आदिक रहते हैं मगर स्पर्श रस आदिक सभी अणुओं में हैं और अणु मिलकर एक पिण्ड बने तो वहां भी स्पर्श आदिक रहे। किन्तु अणु में न था और स्कन्ध बने तब ही स्पर्श आदिक हो, ऐसी बात नहीं है। इस कारण स्पर्शादिक तो अणु के ही कहलाते हैं। शब्द बंधादिक ये अणु के नहीं कहला सकते, क्योंकि अणुओं में ये पर्यायें हैं ही नहीं। वहां तो केवल स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है—आकार के नाते, प्रदेश के नाते। और, शब्द बधादिक जो पर्यायें हुई हैं वे स्कन्ध होने पर ही हुई हैं। इससे ही सूत्र में कहे गये दोनों शब्दों का पूर्व सूत्र जो दो कहे गये है उनके साथ क्रम से सम्बन्ध बनता है, यह सूचना देने के लिये अणु और स्कन्ध दोनों शब्दों का समास न करके जुदे-जुदे पद में रखा है।

परमाणु कारण कार्योभयरूपता—अब यहां एक शंकाकार कहता है कि परमाणु तो कारण रूप ही होता है और वही वास्तविक अन्त्य परमाणु कहलाता है। यह शंका करना भी बिना विचारे बोलना है, क्योंकि परमाणु कथंचित् कार्य रूप भी हैं। जैसे आगे सूत्र आयेगा—भेदादणुः, भेद से अणु परमाणु बनता है। तो वह अणु कार्य रूप ही तो कहलाया। तो अणु केवल कारण रूप ही है, यह कहना सही तो न रहा। यदि शंकाकार यह कहे कि हमको कथंचित् कार्यरूप परमाणु को मानने में विरोध नहीं है, पर परमाणु के कारणपने का निषेध तो नहीं हुआ, इसके उत्तर में कहते हैं कि बात तो यह ठीक है, परमाणु कार्य रूप भी है, कारण रूप भी है, किन्तु यहाँ शंकाकार तो एकवाद शब्द लगाकर बोलता है कि परमाणु कारण रूप ही है। तो ऐसा कहने से परमाणु के कार्यरूपपने का निषेध तो बन जाता है सो तो सही नहीं है, परमाणु कारणरूप भी है और कार्यरूप भी है। और, शंकाकार ने साथ ही यह कहा अपने सिद्धान्त में कि कारण परमाणु नित्य ही होता है या परमाणु नित्य ही होता है, सो भी अयुक्त है, क्योंकि परमाणु स्निग्ध, रुक्ष आदिक रूप परिणमन होने से अनित्यरूप भी है। कोई परमाणु स्निग्ध में ही अनेक डिग्रियों में परिणमन करता रहता है अथवा कभी स्निग्ध से रुक्ष रूप परिणमता है तो एक अवस्था का प्रादुर्भाव हो, एक अवस्था का व्यय हो तो जहां उत्पाद व्यय हो वहीं तो अनित्यपना कहलाता है। अब शंकाकार कहता है कि कारण परमाणु यदि अनादि से ही अणुत्व अवस्था में रहता है और वह दो अणु आदिक पिण्ड रूप कार्य का कारण भी बनता है तो भी वह कारणरूप ही तो रहा, कार्य न रहा, क्योंकि वह भेद से उत्पन्न नहीं हुआ। वह तो अपनी स्वरूप सत्ता को लिये हुये है ही। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि परमाणु को यदि अनादि से अणुत्व

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अवस्था वाला ही माना जाये अर्थात वह अणु से कभी स्कन्ध रूप में नहीं आता तो ऐसे अणु में कार्यपना हो ही नहीं सकता। अर्थात जो शंकाकार की यह मान्यता है कि द्वयणुक आदिक स्कंदों का हेतुभूत होने पर भी वह सदा कारणरूप ही रहता है तो दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। यदि अनादि पारिणामिक अणुरूप ही अवस्था मानी जाये तो उसका कार्य नहीं हो सकता। कार्य हुआ तो वह अणुत्व स्वभाव न रहेगा। सो कार्यरूप तो स्वीकार करते ही हैं, क्योंकि कार्यरूप न माने तो कारण शब्द भी नहीं कहा जा सकता। तो जब कार्य मान लिया गया तो एक बार वह स्कन्ध में आ गया, पिण्ड रूप बन गया। अब जब कभी भी उनका भेद होगा तो उससे अणु की निष्पत्ति होगी इस कारण वह कार्यरूप सिद्ध हो ही जाता है।

छाया आदिकों की स्कन्ध कार्यता—यदि शंकाकार यह कहे कि छाया आदिक भी परमाणु के कार्य हैं जो कि अनादि से अणु रूप रह रहा है सो यह कहना भी अयुक्त है, क्योंकि छाया जैसा कार्य स्कन्धों के कारण होता है। ये छाया आदिक अनादि परमाणु के कार्य नहीं हैं, किन्तु अनेक परमाणुओं का मिलकर जो शरीरादिक पिण्ड बना है वह पिण्ड का कार्य है छाया। यहां यह संदेह न कहना कि यह केवल कहने मात्र की चीज है, छाया आदिक स्कन्ध के कार्य हैं, परमाणु के कार्य नहीं हैं, यह संदेह यों न रखना कि छाया आदिक तो चाक्षुष हो रहे हैं, चक्षुइन्द्रिय के विषयभूत हैं। सबको दृष्टि में आ रहा है कि यह यह अमुक चीज की छाया पड़ रही है। तो जो भी चाक्षुष है, छाया आदिक वे अचाक्षुष अणु के कार्य नहीं हो सकते। परमाणु तो स्वयं अचाक्षुष है। जब चक्षु इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण में आ ही नहीं सकता तो उसका कार्य कैसे चाक्षुष बन जायेगा? और जो शरीर आदिक की छाया पड़ रही है वह शरीरादिक चाक्षुक है तो उनका कार्य छाया आदिक भी चाक्षुष है।

परमाणु की विशेषतायें—यहाँ यह निष्कर्ष निकला कि वह परमाणु द्रव्य दृष्टि से नित्य है, पर्यायदृष्टि से अनित्य है और इसी प्रकार परमाणु कारणरूप है—और कार्य रूप भी है। परमाणु में कोई एक रस रहेगा। पाँचों रस पर्यायें नहीं रह सकतीं। दो गन्ध पर्यायों में एक गन्ध पर्याय होगा, इसी प्रकार ५ वर्ण पर्यायों में से कोई एक वर्ण पर्याय होगी। स्पर्श में दो स्पर्श पर्याय हो सकते हैं। स्निग्ध सूक्ष्म में से एक शीत और उष्ण में से एक। इस तरह परमाणु ५ गुण पर्याय वाला हुआ। स्कन्ध तो अनेक परमाणुओं का पिण्ड है, सो उसमें यह देखा जाता है कि उसका कोई हिस्सा चिकना है तो कोई हिस्सा रुखा है। कोई ठंडा है तो कोई गरम है। जैसे एक धूपदान है वह गरम है और उसमें जो डंडी है, उठाने की वह डंडी है या कोई एक ही काठ है वह एक ओर गरम है, एक ओर ठंडा है। स्कन्धों में तो यह बात देखी जा सकती, पर परमाणु में यह बात नहीं हो सकती, क्योंकि वह अविभागी पुद्गल द्रव्य है। उसमें तो रस पर्याय कोई एक, गन्ध पर्याय कोई एक, वर्ण पर्याय कोई एक और दो स्पर्श पर्यायें होती हैं। दो स्पर्श पर्यायें परमाणु में मानने पर कोई विरोध नहीं है। परमाणुओं में गुरुलघु, कोमल, कठोर ये स्पर्श सम्भव ही नहीं हैं। ये चार स्पर्श पर्यायें स्कन्ध में ही होती हैं। परमाणु है या नहीं, उनका अस्तित्व उनके कार्य से जाना जाता है। यदि परमाणु न होते तो शरीर इन्द्रिय और जो जो भी कुछ दृश्य पदार्थ हो रहे हैं ये कार्य न बन सकते थे। अथवा जो भी दिख रहा है, इसके भाग बनाये जायें, दो भाग हुये, चार भाग हुये, बनाते जायें, जो अन्तिम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाग है उस भाग के भी सहज अनेक भाग होवेंगे। उन सबमें जो अविभागी पुद्गल है उसी को ही अणु कहते हैं।

अणु की अनेकान्तरूपता—अणु के सम्बन्ध में जो जो भी दार्शनिक के सिद्धान्त हैं वे किन-किन दृष्टियों को लेकर हैं, इस कारण यदि उसका पूर्णरूप से निर्णय बनाया जाये तो वह अनेकान्त का ही निर्णय बन सकता है और उस दृष्टि से परमाणु कथञ्चित् कारणरूप है, कथञ्चित् कार्यरूप है। क्योंकि दो अणु वाला अनेक अणु वाला स्कन्ध बनने का निमित्त है परमाणु। मूल तो परमाणु ही है इस कारण वह कारणरूप है। पर अब स्कन्ध अवस्था में आ गया, तब कभी भेद होगा तो भेद होते-होते अन्तिम भेद से जो निष्पन्न होगा वह परमाणु है और इसी कारण वह कार्यरूप है। परमाणु का और भेद नहीं हो सकता और इसका कारण कार्यरूप है। परमाणु का और भेद नहीं हो सकता इस कारण परमाणु कथञ्चित् अन्त्य है अर्थात् अन्तिम भाग है जिसके कि और विभाग नहीं हो सकते, फिर भी याने प्रदेशमात्र होने पर भी गुणों का भेद उनमें पाया जाता है। एक प्रदेशी परमाणु में भी स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णादिक गुणों पर दृष्टि देते हैं तो उन दृष्टियों से इसके भेद बनने से यह अन्त्य नहीं रहता है। ये परमाणु अपने इस द्रव्य स्वरूप का त्याग नहीं कर सकते इस कारण ये नित्य हैं। तो बंध और भेद पर्याय की दृष्टि से या उनके गुण अन्य-अन्य पर्यायों रूप से परिणमते रहने से ये परमाणु अनित्य कहलाते हैं। ये परमाणु कार्य के द्वारा पहिचान में आते हैं। इन पिण्डों को देखकर परमाणु का अनुमान ज्ञान बनता है इस कारण परमाणु, कार्यलिङ्ग है, अर्थात कार्य जिसका अस्तित्व बताने वाला चिन्ह हो उसे कार्यलिङ्ग कहते हैं। फिर भी प्रत्यक्ष ज्ञान में आ सके, ऐसी पर्याय की दृष्टि से वह कार्यलिङ्ग नहीं है। यहाँ तक परमाणु का कथन हुआ।

अब कुछ स्कन्ध के बारे में कहते हैं। स्कंध कहलाता क्या है? जिसका बंध परिणाम प्राप्त हुआ है अर्थात अनेक परमाणुओं का मिलकर बंध होकर जो पिण्ड बना है उसको स्कंध कहते हैं। वह स्कंध है क्या? बंध को प्राप्त परमाणुओं का ही समूह है। ऐसे ये स्कंध तीन प्रकार हैं—स्कंध, स्कंध देश और स्कंध प्रदेश। अनन्तानन्त परमाणुओं का जहां बंध विशेष हुआ है वह पूरा पिण्ड स्कंध कहलाता है। उसका आधा भाग देश कहलाता है और उस आधे का भी आधा भाग प्रदेश कहलाता है। वह स्कंध ये ही सब पर्यायें तो हैं, जो दृष्टिगोचर हैं, हमारे उपयोग और व्यवहार में आ रहे हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। अन्य दार्शनिकों की दृष्टि के अनुसार वनस्पति भी चूंकि पिण्ड रूप है, सो उसे ही अन्य जनों ने पृथ्वी में ही गर्भित किया है। पृथ्वी घट आदिक है, जो स्पर्श आदिक गुण वाले हैं, और शब्द बंध आदिक द्रव्य पर्याय वाले हैं। जल आदि भी विकार रूप होने से यह भी स्पर्शादिक गुण वाला है और शब्दादिक पर्यायों वाला है।

प्रत्येक भौतिक पदार्थों की स्पर्श रस, गन्ध वर्ण युक्तता—कुछ दार्शनिकों की ऐसी दृष्टि है कि पृथ्वी में तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण चारों पाये जाते हैं, पर जल में गन्ध नहीं पाया जाता। अग्नि में रस और गन्ध दोनों नहीं पाये जाते, वायु में रस, गन्ध, वर्ण तीनों नहीं पाये जाते, पर उनका कथन भी मोटा कथन है। वास्तव में तो जहाँ स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण में से कोई एक भी गुण हो तो वहां चारों गुण होते ही हैं। भले ही किसी में किसी गुण की पर्याय प्रकट न मालूम होती हो तो भी ये गुण सदा चारों ही साथ रहते हैं। वस्तुतः तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु भी जुदे-जुदे पदार्थ नहीं हैं। पर्यायें सब जुदी-जुदी चल रही हैं। किन्तु वे सब एक पर्याय जाति के ही रूप हैं तब ही तो सूर्यकान्त-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मणि जो पृथ्वी है वह सूर्य की किरणों का सान्निध्य पाकर जल बनता, चन्द्रकान्तमणि चन्द्र की किरणों का संयोग पाकर जल होता। तो पृथ्वी भी जल रूप बन गई। तो ऐसे ही ये चारों पर्यायें भी एक स्कन्ध में, कालान्तर में बदलती रहती हैं और इसी कारण जब सब का मूल परमाणु है तो सभी में स्पर्श, रस, गन्ध याने ये चारों ही गुण पाये जाते हैं ऐसे अनेक परिणमन अनुभव में भी आ रहे हैं। कोई आहार ग्रहण किया, जल पिया उसके फल में भी बात, पित्त, श्लेष्मा, ये परिणमन होते हैं। जठराग्नि भी है, तेज भी है। उस खाये हुए अन्न में वायु भी बन गई तो ये सब एक दूसरे रूप परिणमते रहते हैं। तो यों पृथ्वी हो वह भी चारों गुणवान है। इसी तरह जल, अग्नि, वायु भी चारों गुणों से युक्त है। इस कारण जिसका यह दर्शन है, सिद्धांत है कि पृथ्वी आदिक ४, ३, २, १ गुण वाले हैं, वह सिद्धांत युक्त नहीं है।

अणु और स्कन्धों की निष्पत्ति की विधि की जिज्ञासा—अब यहाँ तक अणु और स्कंध का लक्षण कहा गया तो वहाँ यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि अणुरूप और स्कंधरूप परिणाम क्या अनादि से ही ऐसा है या वह किसी समय बनता है, अनादिमान है? तो उत्तर तो इसका यही है कि वह अनादिमान है। उनका यह परिणमन, आकार, पर्याय समय-समय पर बनता हैं। तो जब यह आदिमान है तो यह भी जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि आखिर वह किस निमित्त से उत्पन्न होता है। तो इस जिज्ञासा के समाधान के लिए अणु और स्कंधों की निष्पन्नता का कारण बतायेंगे जिसमें सर्वप्रथम संघात की उत्पत्ति का करण बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥५-२६॥

स्कन्ध की निष्पत्ति का विधान—भेद, संघात और भेद संघात से स्कंध उत्पन्न होता है। भेद किसे कहते हैं? मिले हुए स्कन्ध का बाह्य आभ्यंतर कारण के वश से नानापन हो जाना इसे भेद कहते हैं, और संघात किसे कहते हैं? अलग-अलग रहने वाले पदार्थों का एकीभाव हो जाना इसे संघात कहते हैं। यहाँ एक शंका हो सकती है कि जब शब्द दो ही दिये हैं—भेद और संघात, और दोनों का समास किया है तो द्विवचन इस पद में आना चाहिये। बहुवचन क्यों दिया है? समाधान यह है कि दो शब्द हैं और उनका समास है और फिर भी बहुवचन है तो उसमें कोई अर्थ विशेष जाना जाता है। अथवा ये ३ शब्द रखना चाहिये। (१) भेद (२) भेदसंघात और (३) संघात। तीनों का समास होने पर दो बार प्रयुक्त किये गये भेद शब्द में एक लुप्त हो जाता है। जिससे तीन जाहिर होता है। कोई संघात बड़ा है और उसका भेद बना और भेद होने पर भी संघात ही रहा, स्कंध ही रहा। तो वह स्कंध भेद से उत्पन्न हुआ है, जैसे मानों ८ अणुओं का स्कन्ध है और भेद हो जाने पर ४-४ अणु के दो स्कन्ध हो गये तो स्कन्ध ही तो रहे, तो ऐसे ये स्कन्ध भेद से उत्पन्न हुए हैं। कभी स्कन्धों का भेद हुआ और उसी समय उसमें कुछ स्कंध या अणु मिल गये तो वह भेद संघात रहा, भेद भी रहा और संघात भी रहा याने भेद के साथ संघात रहा। यों यह स्कंध भेदसंघात से उत्पन्न हुआ और केवल संघात से उत्पन्न हुआ, यह तो केवल स्पष्ट ही बात है। अनेक परमाणु मिल गए, स्कंध बन गया। यहाँ उत्पद्यन्ते क्रिया है, जिसमें उप तो उपसर्ग है और पदगतो धातु है। उत उपसर्ग के साथ पद धातु का अर्थ बनता है उत्पन्न होना। स्कंध भेद संघातों से उत्पन्न होता है। यहाँ भेद संघातेभ्यः यह हेतु के अर्थ में पद प्रयुक्त है। भेद संघातों के कारण यह स्कन्ध उत्पन्न होता है। विभक्ति तो यह पंचमी है और पंचमी विभक्ति भी हेतु अर्थ में आती है, लेकिन प्रकरण अनुसार सभी विभक्तियों के हेतु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थ निकल जाते हैं। स्कन्ध दो अणु का भी होता है। एक-एक बढ़ाते जाइये—संख्यात, असंख्यात अणुओं का होता है और अनन्त अणु का भी स्कन्ध होता है। तो दिखने में जितने भी स्कन्ध आते हैं वे सब अनन्ताणुस्कन्ध हैं। अब स्कन्धों की उत्पत्ति के कारण बताकर अणु की उत्पत्ति का कारण बतलाते हैं।

भेदादणुः·······॥५—२७॥

अणु की निष्पत्तिका विधान—अणु भेद से ही उत्पन्न होता है। इस सूत्र में केवल २ पद हैं —भेदात् और अणुः। जिसका सीधा अर्थ है भेद से अणु होता है, किन्तु स्कंधों की उत्पत्ति बताने के बाद इस सूत्र में अवधारण होता है अर्थात अणु भेद से ही होता है। ऐसे अनेक प्रयोग होते हैं जिसमें एव तो नहीं लगा रहता, पर उसका अर्थ निकलता है। जैसे किसी के विषय में कहा जाय कि यह तो पानी खाता है तो उसका अर्थ यह निकलता कि पानी के सिवाय और कुछ खाता ही नहीं है। सो ऊपर सूत्र में कहा गया कि भेद और संघात से ये सब उत्पन्न होते हैं। तो प्रकरणवश तो अणु और स्कंध सबके लिए बात आई थी पूर्व सूत्र में, फिर यहाँ अणु की उत्पत्ति बताने का अर्थ ही यह है कि अवधारण करता है कि अणु भेद से ही होता है। इससे पहले जो सूत्र कहा गया था, जिसमें वर्णन बताया गया स्कंधों का और सूत्र जिस सिलसिले से कहा गया है उसके माफिक तो दोनों ही आते हैं। भेद, भेद-संघात और संघात से अणु और स्कंध हुआ करते हैं। अब उसमें जिस तरह जो होता हो उस तरह लगा लिया जाता है। तो जब भेद की बात वहाँ आ गई तो भेद कहना एक अवधारण सिद्ध करता है। और इस ही अवधारण के कारण पूर्व सूत्र में स्कंधों का ही वर्णन है। ऐसा फलितार्थ निकलता है। परमाणु भेद से ही उत्पन्न होता है। न तो भेद संघात से होगा और न संघात से होगा। परमाणु एक प्रदेशी होता है। किसी स्कंध का भेद करके संघात किया जाय उससे अणु हो ही नहीं सकता। अथवा कुछ और मिलता और उससे अणु हो ही नहीं सकता या स्कंधों का भेद होने पर भी अनेक परमाणुओं का स्कंध रहे दोनों तो भी अणु नहीं बना। ऐसा भेद हुआ जिससे एक प्रदेशी अणु अलग हो जाय तो ऐसे भेद से अणु उत्पन्न होता है। अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि उत्पत्ति बताने वाले सूत्र में संघात शब्द से ही स्कंध की सिद्धि हो जाती है तो फिर वहाँ भेद संघात ग्रहण करना अनर्थक रहा। तो उस भेदपूर्वक संघात का जो ग्रहण किया गया उसका प्रयोजन बताने के लिए अब सूत्र कहते हैं।

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥५—२८॥

अचाक्षुष स्कंध से चाक्षुष स्कंध की निष्पत्ति का विधान— पहले जो ३ बातें कही गई थीं कि स्कन्ध भेद से होता है, भेद संघात से होता है और संघात से होता है तो उनमें कोई आँख से से दिखने वाला स्कन्ध है और उसका भेद हो गया तो भेद हो जाने पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह भेद किया गया स्कन्ध भी आँखों से दिख ही जायेगा। दिख भी जाये ऐसा भी हो सके और न दिखे ऐसा भी हो सके। कोई अचाक्षुष स्कन्ध है जो आँखों से नहीं दिख सकता। उसके भेद होने पर स्कन्ध तो रहा आयगा, पर वह दिखेगा ही नहीं। यहाँ यह जानकारी कराई जा रही है कि कोई स्कन्ध चाहे वह अनन्त परमाणुओं के समूह से भी बना हुआ है, यदि अचाक्षुष है तो वह चाक्षुष कैसे हो सकता है? उसके यहाँ दो कारण बताये गये। जो भी अचाक्षुष स्कन्ध भेदसंघात और संघात से होता है, केवल भेद से नहीं होता। कोई स्कन्ध इतने छोटे हैं कि वे आँखों से दिखते ही नहीं हैं। तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसके भेद करने से तो और भी छोटे हो जायेंगे। आँखों से कैसे दिखेंगे? इस कारण अचाक्षुष स्कंध सिर्फ भेद पूर्वक संघात होने से अथवा संघात होने से ही चाक्षुष हो सकता है। अब यहाँ एक स्मरण के साथ जिज्ञासा होती है कि पहले तो यह बताओ कि सभी द्रव्यों का उपकार कैसे होता है? गति स्थिति, अवगाह, वर्तना शरीरादिक परस्पर जैसे उपकार के द्वारा अनुमान किया गया था, उन द्रव्यों का लक्षण क्या है? वे द्रव्य हैं यह कैसे निश्चित होता है। उसके उत्तर में कहते हैं—

सद् द्रव्यलक्षणम् ॥५-२९॥

द्रव्य का लक्षण—द्रव्य का लक्षण सत् है। जो सत् है वह द्रव्य है। अब सत् का लक्षण क्या है, यह भी एक जानना बहुत आवश्यक है, उसके लिए सूत्र कहेंगे, उससे लक्षण जाना जायेगा। कोई सत् चाहे इन्द्रिय ग्राह्य हो चाहे अतीन्द्रिय हो, प्रत्येक सत् में बाह्य और अध्यात्म निमित्त की अपेक्षा उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तता होती है। वही सत् होता है। तो जितने भी ये धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदिक द्रव्य हैं वे सत्त्व होने के कारण द्रव्य हैं। तो अब यहां सत् का लक्षण कहा जा रहा है।

उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत् ॥५-३०॥

सत् का स्वरूप—उत्पादव्यय ध्रौव्य से युक्त हो उसे सत् कहते हैं। यह लक्षण कहना क्यों आवश्यक हुआ कि एक मोटे रूप से कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि जो पदार्थ गति, स्थिति आदिक का उपकार करे वह द्रव्य कहलाता है। तो कदाचित् ये पदार्थ उपकार करते हुये विदित न हों तो क्या ये द्रव्य न कहलायेंगे? उस प्रश्न के उत्तर में यह सूत्र आता है कि चाहे किसी को उनका उपकार विदित हो या न हो, लेकिन जो उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त है वह पदार्थ सत् होता है। उत्पाद का अर्थ है अपनी जाति का परित्याग न करके अन्य भावों की प्राप्ति होना उत्पाद है। चेतन अथवा अचेतन द्रव्यों का अपनी जाति न छोड़ते हुये निमित्त वश से अन्य भावों की प्राप्ति होना उत्पाद है। जैसे मिट्टी के पिण्ड में मिट्टी जाति को न छोड़कर घड़ा बन गया, यह उत्पाद हुआ, किसी भी पदार्थ में उत्पाद अपनी जाति को त्याग कर नहीं होता। जैसे मिट्टी से कपड़ा न बन जायेगा। उस मिट्टी में जो भी उत्पाद होगा वह मिट्टी जाति का ही होगा, किसी जीव में जो भी उत्पाद होगा तो जीव में जो गुण हैं उन गुणों में ही उत्पाद होगा। कहीं जीव पुद्गल के रूप से न उत्पन्न हो जायेगा। कोई भी पदार्थ अपनी जाति को त्यागकर नहीं उत्पन्न हुआ करते, क्योंकि उत्पन्न होने के मायने कोई नई चीज बनती नहीं है, किन्तु जो है उसकी ही अवस्थायें बदल जाती हैं। तो अवस्था बदलने का अर्थ ही यह है कि जाति वही ही रहेगी, उसकी अवस्थायें बदल जायेंगी। व्यय किसे कहते हैं? अपनी जाति का परित्याग न करके पहले भावों का विलय हो जाना इसे व्यय किसे कहते हैं। जैसे जब घट उत्पन्न हो गया तो मृतपिण्ड के आकार का व्यय हो गया। ध्रुव नाम किसका है? जो अनादि परिणामिक स्वभाव रूप से न तो व्यय को प्राप्त होता है, न उदय को प्राप्त होता है किन्तु ध्रुव रहता है, स्थिर रहता है उसे ध्रुव कहते हैं। और ध्रुव के भाव का नाम है ध्रौव्य। जैसे मृतपिण्ड अवस्था हो चाहे घट अवस्था हो, सभी में मिट्टी का अन्वय रहता है। जैसे जीव की चाहे संसार अवस्था हो या मुक्त अवस्था हो, सब अवस्थाओं में जीव स्वरूप का अन्वय रहता है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य व सत् का संज्ञा लक्षण प्रयोजनादि की अपेक्षा कथंचित् भेद और पदार्थ के स्वरूप प्रदेश की अपेक्षा अभेद—यहाँ एक प्रश्न होता है कि युक्त शब्द का प्रयोग वहाँ होता है कि पहले तो पदार्थ वे भिन्न-भिन्न हों, फिर उनका संयोग हो तब युक्त शब्द लगता है। जैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छतरी से युक्त, घन से युक्त, तो ये पदार्थ पहले अलग-अलग हैं, फिर इनका सम्बन्ध बना तो ये युक्त कहलायेंगे। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि युक्त शब्द युजि धातु से बना है। जिसके अर्थ में सत्ता का अर्थ समाया हुआ है। सभी धातु भेद पायी होती हैं, उनका विशेष हो तो भी उसमें सत्त्व गर्भित है। तो इसे सामान्य भेद सत्ता से वे सब विशेष धातुयें अपने अर्थ को और साथ लगाकर विषय किया करती हैं। धातु का जो विशेष अर्थ है उस अर्थ के साथ भी सत्त्व लगा हुआ है। तो यहाँ चाहे उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत् कह दिया जाये, चाहे उत्पाद व्यय ध्रौव्य सत् कहो, एक ही बात है। यहां उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण आदिक भेद से भिन्न भिन्न भी कथञ्चित् हैं और उन द्रव्यों से जुदे प्रदेशों में नहीं पाये जाते हैं इससे वे अभिन्न भी हैं। सर्वथा भेद नहीं सर्वथा अभेद नहीं, सर्वथा अभेद मानने पर अब प्रतिपादन ही नहीं हो सकता। सर्वथा भेद मानने पर वस्तु का स्वरूप ही नहीं हो सकता। इस कारण इस विषय को स्पष्ट करने के लिये इसमें युक्त शब्द दिया गया है। सत् शब्द के यद्यपि अर्थ अनेक होते हैं तो भी अस्तित्व अर्थ यहां सत् शब्द का लिया गया है। सत् का अर्थ सज्जन भी होता, जैसे सत्पुरुष, सत् का अर्थ सत्कार भी होता। जैसे सत्कार में खुद सत् शब्द जुड़ा हुआ है। सत् का अर्थ 'होता हुआ' ऐसा भी चलता है। जैसे गच्छन्सन् आदि। यहाँ सत् शब्द का अर्थ अस्तित्व लिया गया है। जो जो भी पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त होते है वे सत् हैं या जो जो भी भी पदार्थ सत् हैं वे सब उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त हैं।

पदार्थों की उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मकता का नियम—जो भी पदार्थ होता है वह प्रति समय नई दशा धारण करता है, पुरानी दशा बिलीन करता है और स्वयं बना रहता है। नई अवस्था होने का नाम उत्पाद है, पहली अवस्था विलीन होने का नाम व्यय है और वही पदार्थ रहता है, वही ध्रौव्य है। जैसे कोई जीव मनुष्य है और मरकर देव बना तो देव पर्याय के रूप में जीव का उत्पाद है। मनुष्य पर्याय के रूप से जीव का नाश है और जीवत्व की दृष्टि से जीव का ध्रौव्य है। ऐसा उत्पाद व्यय ध्रौव्य प्रत्येक पदार्थ में होता है। यदि कोई पदार्थ निर्मल है शुद्ध है तो उसके उत्पाद व्यय का पता नहीं पड़ पाता कि क्या तो उत्पन्न हुआ और क्या चीज नष्ट हुई? जैसे जब जीव केवलज्ञानी बन जाता है तो केवलज्ञान में तो तीन लोक, तीन काल के समस्त पदार्थ ज्ञेय हो गये और एक ही समय में सर्व कुछ जान लिया। अब दूसरे समय में क्या करता है। यह सब कुछ दूसरे समय में जानता है। तीसरे समय में क्या करता है? यही सब कुछ तीसरे समय में जानता। तो वहां यही बात जल्दी में विदित होती है। जो पहले जाना वही अब जान रहा, कुछ नई दशा तो नहीं बनी, लेकिन दूसरे समय में वह पूर्णतया नई अवस्था है पर्याय दृष्टि से, क्योंकि जानने में ज्ञान शक्ति का परिणमन तो हो रहा है। तो दूसरे समय में जो जानन बना वह दूसरे समय का अवस्था होना है। और तब पहले समय की अवस्था न रहो, जीव वही है। प्रत्येक पदार्थ चाहे वह शाश्वत, शुद्ध रहता हो, चाहे किसी प्रकार का हो, उत्पाद व्यय तो सदा रहता है।

द्रव्य का द्रव्य रूप से अवस्थान होने में ध्रौव्यत्व की सिद्धि—इस प्रकरण में एक शंका होती है कि पदार्थ में जो उत्पाद और व्यय बने याने नई परिणति बनी, पुरानी परिणति विलीन हुई सो ये दो बातें द्रव्य से अभिन्न हैं या भिन्न हैं। नई अवस्था का होना, पुरानी अवस्था का विलीन होना, ये क्या द्रव्य से बाहर हो रहे हैं या द्रव्य में ही अभिन्न हैं? उन ही की परिणति है। भिन्न तो हैं नहीं, क्योंकि द्रव्य से बाहर द्रव्य की कोई दशा नहीं पायी जाती। जैसे एक अंगुली सीधी है, उसे टेढ़ी की

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गई तो यह वहाँ निरखिये कि अंगुली का टेढ़ापन होता है तो उस समय अंगुली का सीधापन नष्ट हो जाता। ये उत्पाद व्यय बताओ अंगुली से बाहर हो रहे क्या? बाहर तो कोई नहीं कह सकता। अंगुली में ही चल रहे हैं, ऐसे ही प्रत्येक पदार्थ के उत्पाद और व्यय में पदार्थ से अभिन्न है तो लो जब उत्पाद व्यय द्रव्य से अभिन्न हो गये तो फिर द्रव्य ध्रुव कैसे रह गया? उत्पाद हुआ और वह है द्रव्य से अभिन्न तो मानो द्रव्य ही एक नया बन गया। तो ध्रुव तो न रहा, इसके उत्तर में कहते हैं कि जो द्रव्य को ध्रुव कहा जा रहा है कि द्रव्य सदा रहा करता है सो इस कारण से नहीं कहा जा रहा कि द्रव्य उत्पाद और व्यय से भिन्न है। याने द्रव्य की सत्ता बनी रहने का कारण यह नहीं है कि द्रव्य उत्पाद व्यय से भिन्न है, किन्तु कारण है कि द्रव्य, द्रव्य रूप से सदा रहता है इसलिये द्रव्य ध्रुव है। द्रव्य उत्पत्ति और विलीनता से अभिन्न है या भिन्न है? इसका समाधान तो आगे दिया जायेगा, किन्तु यहां यह जानें कि उत्पाद व्यय से द्रव्य को भिन्न मानें। तब ही ध्रुव बने यह कोई सिद्धान्त नहीं है, द्रव्य में उत्पाद व्यय खूब होते हैं, प्रति समय होते हैं मगर द्रव्य, द्रव्य रूप से सदा रहता है इस कारण ध्रुव है। जैसे जीव अभी मनुष्य था, अब देव हो गया तो मनुष्य का विलीन होना, देव का उत्पन्न होना और जीव का सदा रहना ये तीन बातें जो कही गईं उसमें कोई यह प्रश्न करे कि बतलाओ मनुष्य का विलीन होना और देव का उत्पन्न होना यह जीव से अभिन्न है ना? तो हर एक कोई कहेगा कि हाँ अभिन्न है जीव तो आधार बने नहीं और उत्पाद व्यय बाहर होते रहें ऐसा तो कहीं नहीं होता। तो अभिन्न है देव का होना, मनुष्य का विलीन होना, इससे कहीं द्रव्य अध्रुव नहीं हो जाता। मनुष्य के विलीन होने से, देव के उत्पन्न होने से भिन्न जीव को माना जाये तब जीव सदा रहे ऐसा सिद्धान्त नहीं है किन्तु जीव जीवपने से सदा रहता है इस कारण ध्रुव हैं, ऐसे ही प्रत्येक द्रव्य, द्रव्यपने से सदा रहता है इसलिए ध्रुव कहा जाता है, इसके विपरीत कोई कल्पना तो करे कि उत्पाद और व्यय से द्रव्य जुदे हैं इस कारण ध्रुव है तो फिर यों उल्टा भी कोई कह सकता कि चूंकि द्रव्य से भिन्न है उत्पाद व्यय इसलिये उत्पाद व्यय भी ध्रुव होना चाहिये, क्योंकि अब तो उत्पाद व्यय स्वतन्त्र हो गये। द्रव्य से निराले हो गये। सो भाई अपेक्षा सही जानें। पर्याय दृष्टि से तो उत्पाद व्यय है, पर द्रव्य, द्रव्य रूप से सदा रहता है इस कारण वह ध्रुव है। जब उत्पाद व्यय हो रहा है तब भी द्रव्य स्थिर है। जैसे मिट्टी के लोंधे से घड़ा बन रहा है, घड़े का उत्पाद है और मृत्पिण्ड का विनाश है। लेकिन इसी समय मिट्टी, मिट्टी रूप से है ही है इस कारण वह ध्रुव है। तो यह वस्तु का स्वरूप है। जो सत् है उसका स्वरूप ही यह है कि उसमें अवस्थायें तो बनती जायेंगी और वह चीज अपने स्वरूपतः वही रहेगी।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य व द्रव्य का परस्पर कथंचित् भेद व अभेद का प्रतिपादन—अब इन बातों का अनेकान्त से निर्णय बनाइये। उत्पाद और व्यय द्रव्य से कथञ्चित् भिन्न हैं, कथञ्चित् अभिन्न है। भिन्न तो यों है कि जो व्यय का लक्षण है वह उत्पाद और द्रव्य में नहीं। जो उत्पाद का लक्षण है वह व्यय और ध्रौव्य में नहीं, द्रव्य में नहीं। जो द्रव्य या लक्षण है वह द्रव्य में है, तो लक्षण की दृष्टि से इनमें भेद है मगर हैं तो सब एक ही पदार्थ की विशेषतायें। एक ही द्रव्य किस रूप में परिणमा है और किस रूप में मिट गया है वह सब एक ही पदार्थ की चीज है। यहाँ सीधा निष्कर्ष यों जानें कि जो भी पदार्थ होते हैं वे अपनी जाति का त्याग न करके राग द्वेष रूप से उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। और एकान्त का पक्ष लेने से तो कुछ भी वचन नहीं बोले जा सकते। अच्छा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ये शंकाकार ही बतायें कि वे अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये जिस हेतु का प्रयोग करते वह हेतु साधक है यह मानते, पर वह हेतु साधकपने से सर्वथा अभिन्न है या भिन्न है ? यदि हेतु साधकपने से मायने अपने लक्ष्य को सिद्ध करता है इस रूप से सर्वथा अभिन्न है तो पर पक्ष का साधक भी बन जायेगा, क्योंकि साधक पर पक्ष में या दूसरे प्रतिवादियों में भी हुआ करता है। या परपक्ष की तरह अपने पक्ष का भी दूषण करने वाला बन जायेगा। इससे मानना कि ये तीन पर्यायें हैं—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य। पर्याय के अनेक अर्थ होते हैं। भाग भी पर्याय कहलाते, अंश भी पर्याय हैं। कभी अखण्ड द्रव्य को समझने के लिये गुणों का भेद किया जाये वह भी पर्याय है। सो यह यहां उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप पर्याय, पर्याय वाले द्रव्य में कथंचित् अभिन्न है, कथंचित् भिन्न है। प्रयोजन यह है कि जगत में जो भी पदार्थ हैं वे सदा बने रहते हैं, बनते हैं और बिगड़ते हैं। इस तथ्य को न जानने वाले लोग कोई तो यह हठ करेंगे कि द्रव्य नित्य विलीन वाला ही होता है। तो कोई यों हठ कर लेगा कि द्रव्य तो क्षण-क्षण में नया-नया बनता है। वस्तुत: तथ्य स्याद्वाद से सिद्ध होता है। यहां तो यह जानना कि जैसे गुण द्रव्य में सदा रहते हैं ऐसे ही पर्याय भी द्रव्य में सदा रहती है। इस तरह से गुण और पर्याय ये सब वही द्रव्य ही कहलाये, पर पर्यायें बाहरी तरफ तो दिखती हैं। अभी घड़े रूप में थी मिट्टी अब उसको मार दिया, खपरिया बन गई, तो लो पर्याय दूर हो गई और पर्याय से अभिन्न है द्रव्य तो द्रव्य भी शून्य हो जाना चाहिये। ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्य का स्वरूप कभी रहे कभी न रहे, यह नहीं माना गया है। द्रव्य की अवस्थायें तो कभी रहे कभी न रहे, यह तो हो जाता है पर द्रव्य का स्वरूप कभी रहे कभी न रहे, यह नहीं होता। तो व्यय और उत्पाद होने पर भी द्रव्य सदा रहता है, यह ही बात अगले सूत्र में कहते हैं।

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥५-३१॥

द्रव्य के नित्यपने का स्वरूप—वस्तु के भाव से च्युत न होना सो नित्य है। कोई चीज नित्य है यह कब समझ में आता, जब अपने बारे में यह ज्ञात हो कि यह वही चीज है जो पहले थी, तब तो कह सकते कि यह नित्य है, सदा रहती है। तो ऐसा प्रत्यभिज्ञान पदार्थ में हो रहा है। जो घट दीखा, जो घट का समूह दीखा, जिन लोगों को दीखा उनको देखने पर वही ज्ञान बनता है कि यह वही है। तो यह वही है, ऐसा भाव बनने का जो कारण है वह सत्भाव कहलाता है। वस्तु सदा रहती है, ऐसा यदि न माना जाये तो लोकव्यवहार सब समाप्त हो जायेगा। उधार लेने वाला व्यक्ति उधार का द्रव्य कहो वापिस भी न दें। यदि उधार देने वाला व्यक्ति अपनी चीज वापिस मांगे तो लेने वाला कह देगा कि हमने कहाँ लिया, उधार लेने वाला जीव कोई दूसरा था, मैं तो कोई दूसरा जीव हूँ। यों गड़बड़ मच जायेगा, पर ऐसा है कहाँ ? वस्तु तो वही का वही रहता है। भले ही दिखने में यह बात अटपट सी लगे कि जो ही उत्पन्न हुआ वही नष्ट हुआ, लेकिन इसमें विरोध कुछ नहीं है। मिट्टी घड़ा रूप से उत्पन्न हुई, मृत्पिण्ड रूप से विलीन हुई, यह बात बिल्कुल स्पष्ट है और वह द्रव्य रूप से नित्य बनी रहे। यदि द्रव्य एक हो तब विरोध है। पर्याय दृष्टि से अनित्य है, द्रव्य दृष्टि से नित्य है तो इसमें विरोध क्या ? कोई एक ही पुरुष को पिता कहता है, पुत्र कहता है, मामा कहता है, फूफा कहता है तो सुनने में हर एक कोई कह सकता है कि इसमें तो बड़ा विरोध है। जो जुदा-जुदा धर्म है, वह एक पदार्थ में कैसे हो सकता है ? अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है और अपने पिता के लिये यह पुत्र है, तो उनमें कोई विरोध नहीं आता। एक ही द्रव्य में ये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं और सदा रहते हैं, इनका विरोध सा जचता, पर दृष्टि लगाकर निरखें तो इसमें कोई विरोध की बात नहीं आती है। इस बात को सूत्र द्वारा कहते हैं।

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥५—३२॥

विवक्षा व अविवक्षा से पदार्थ में नाना धर्मों की सिद्धि—गौण और मुख्य में विवक्षा से वे परस्पर विरुद्ध धर्म एक साथ सिद्ध होते हैं। अर्पित का अर्थ है जिस दृष्टि से कह रहे, जिस धर्म को प्रधानता दी जा रही है वह है अर्पित और जिस धर्म को प्रधानता नहीं दी जा रही, वह कहलाता है अनर्पित। ये सब बातें वस्तु में समझने से अपने आत्मा को क्या प्रयोजन मिलता है। वह प्रयोजन यही मिलता कि मैं हूँ और नई नई अवस्थाओं में आता हूँ और पूर्व-पूर्व अवस्थायें विलीन होती हैं। मानलो आज मेरी अज्ञान अवस्था है तो मैं हमेशा अज्ञान अवस्था में ही रहूंगा, ऐसी शंका न करना चाहिये, क्योंकि हममें कभी भी ज्ञान अवस्था आ सकती है। अज्ञान अवस्था नष्ट हो जाती है और वही पदार्थ वही का वही सदा ध्रुव बना रहता है। जैसे मिट्टी का लौंधा, जिसका कुम्हार घड़ा बना रहा है। वहाँ जो भी पदार्थ रखे हैं उन सबको यही देखें कि ये भौतिक रूप पदार्थ हैं इस कारण से वे नित्य चीज हैं, वे तो रहेंगी, क्योंकि वे पदार्थ अपने द्रव्यपने को, पुद्गलपने को कभी छोड़ते ही नहीं हैं। जब उस द्रव्यपने को गौण करदें और घड़ा पर्याय को दृष्टि में लें तो वहाँ उत्पाद समझ में आता। मिट्टी के लौंधे को विवक्षा में लें तो उससे व्यय समझ में आता। यों तत्त्व सब नित्य और अनित्य है। केवल नित्य माना जाय तो द्रव्य नहीं रह सकता और केवल अनित्य माना जाय तो व्यवहार नहीं, वस्तु नहीं। इस प्रकार द्रव्य के बारे में प्रसंग पाकर कुछ थोड़ा खुलासा किया है। अब पहले प्रकरण पर फिर आइये। प्रकरण चल रहा था पुद्गल का। पुद्गल में गुण होते, आकार होता। बिखर कर वे परमाणु रह जाते, इकट्ठे होकर वे पिण्ड बन जाते। यह सब प्रकरण चल रहा था। अब इस सूत्र में यह कहा जा रहा है कि कैसे परमाणुओं का संयोग मिलने पर बंध दशा बनती है। अलग-अलग परमाणु पड़े हैं तो वह कौन सी वजह है जिस कारण वह एक पिण्डरूप बंध जाता है? उसके उत्तर में यह सूत्र है?

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥५—३२॥

पुद्गलों के परस्पर बन्ध का कारण स्निग्धपना व रूक्षपना—इन स्कन्धों में जो बन्ध होता है वह स्निग्ध और रूक्षता गुण के कारण होता है। प्रकरण में और भी गुण पर्याय हैं। जैसे परमाणु ठण्डा है, गरम है। पर ठण्डा और गरम होने के नाते से परमाणुओं का बन्ध नहीं होता, किंतु स्निग्ध रूक्ष गुण के कारण होता है। जैसी ठण्डी चीज के पास गरम चीज रख दी, इससे वे दोनों एक पिण्ड नहीं बनते, पर चिकनापन हो, कोई रूखापन हो, उनकी डिग्रियाँ होती हैं। तो उस गुण के कारण उनका बंध होता है। चिकनापन और रूखापन के अनन्त भेद होते हैं। जैसे बुखार की डिग्रियाँ होती हैं, उनमें कई डिग्रियाँ होती हैं और तापमान से बताते जाते कि इसके इतना बुखार है। ऐसे ही स्निग्ध रूक्ष में भी बहुत प्रकार होते हैं। जैसे एक दूध को ही देखें तो बकरी का दूध जितना चिकना होता है उससे अधिक चिकना गाय का दूध होता है। गाय के दूध से भी अधिक चिकनाई भैंस तथा ऊँट के दूध में होती है। तो जैसे यहाँ दूध में चिकनाई की डिग्रियाँ देखी गईं ऐसे ही अनन्त परमाणुओं में चिकनाई, रूखाई की डिग्रियाँ होती हैं। सो जब उस योग्य डिग्री वाले चिकने या रूखे परमाणु मिलते हैं तो उनका बन्ध हो जाता है। जैसे लोक व्यवहार में कहते हैं कि यह दूध १० डिग्री

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चिकना अधिक है, यह २० डिग्री चिकना अधिक है। तो उनमें एक (१) डिग्री तो कुछ होती है जिसको मिलकर १० डिग्री कहा। जो एक डिग्री का चिकनापन है वह है जघन्य गुण और उससे अधिक चिकनापन जो है वह बन्ध के योग्य है। सो बतलाते हैं कि उसमें जो बन्ध होता है पुद्‌गल अणुओं में सो स्निग्ध और रूक्ष गुण के उस उस प्रकार का होता है। इसी बन्ध को आगे कुछ बतायेंगे कि किसमें कितनी डिग्री चिकनाई रूखापन हो तो उनमें बंध हो जाय। यह सब बन्ध व्यवस्था विधि निषेध द्वारा आगे कहेंगे। यहाँ सामान्यतया कहा जा रहा है कि परमाणुओं एक का पिण्डरूप होने का साधनभूत बन्ध जो देखा जाता चिकनाई और रूखेपन के कारण परमाणुओं में वह बन्ध होता है। स्निग्ध की व्युत्पत्ति है बाहरी और भीतरी कारण के वश से स्नेह पर्याय की प्रकटता होने से जो चिकना हो गया उसे स्निग्ध कहते हैं। सूक्ष्म की परिभाषा है कि बाह्य और आभ्यंतर निमित्त के वश से रूखा होना सो रूक्ष है। इस सूत्र में प्रथम पद में पहले तो स्निग्ध और रूक्ष शब्द में द्वन्द्व समास किया गया। फिर इसके बाद भाव अर्थ में तद्धित प्रत्यय जोड़ा गया है। जिसकी निरुक्ति हुई—स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोः भावाः स्निग्ध रूक्षत्वं। चिकनाई स्निग्ध गुण की पर्याय है और रूखापन रूक्षगुण की पर्याय है। तो इस चिकनाई और रूखापन के गुण के कारण परमाणुओं में बंध होता है। बन्ध होने पर वह स्कंध बन जाता है। जैसे दो स्निग्धरूक्ष परमाणुओं का आपस में मिलना हुआ तो बन्ध होने पर वह दो अणु वाला स्कंध कहलाने लगा। इसी प्रकार संख्यात असंख्यात अनन्त परमाणुओं वाले स्कन्ध भी हो जाते हैं। एक स्निग्ध गुण में ही अनन्त प्रकार के अंश होते हैं। जैसे एक डिग्री की चिकनाई, दो डिग्री की चिकनाई, ३ डिग्री की चिकनाई, ऐसे बढ़ते-बढ़ते अनन्त डिग्री की चिकनाई भी अविभाग के प्रतिच्छेद होते हैं। और ऐसी अनेक डिग्री की चिकनाई वाले परमाणु होते हैं, इसी प्रकार रूक्ष गुण में भी समझना कि एक डिग्री का रूक्ष, दूसरी डिग्री का रूक्ष, ऐसे बढ़ते-बढ़ते अनन्त डिग्री की भी रूक्ष पर्यायें होती हैं और ऐसे रूक्ष पर्याय वाले परमाणु होते हैं। जैसे कि पहले बताया था कि बकरी के दूध से अधिक डिग्री चिकनाई गाय के दूध में, उससे अधिक डिग्री की चिकनाई भैंस के दूध में कहा था, उसी प्रकार रूक्ष के विषय में भी जानना कि जैसे किसी मिट्टी में कोई डिग्री रूखापन है तो उससे अधिक रूखापन छोटे चावल के कणों में है, उससे अधिक रूखापन छिलकों में है। उससे अधिक रूखापन बालू में है। ऐसे रूखेपन की भी डिग्रियाँ बढ़ती जाती हैं। सो जब योग्य डिग्री के स्निग्ध अथवा रूक्ष परमाणु मिलते हैं तो उनका परस्पर एक पिण्ड बन जाता है। संयोग और बन्ध में अन्तर है। संयोगी होने पर पिण्ड नहीं बनता, किन्तु बन्ध होने पर पिण्ड बनता है। अब ये स्पष्ट करेंगे कि अब तक यह बात आई कि स्निग्ध और रूक्ष गुण के कारण परमाणुओं में बन्ध होता है तो इस सामान्य कथन से तो सभी प्रकार की डिग्रियों के स्निग्ध रूक्ष गुण के कारण परमाणुओं में बन्ध होने का प्रसंग आता है। तो किस में बन्ध नहीं हो सकता, सबसे पहले यह बात कहते हैं।

न जघन्य गुणानां ॥५—३४॥

एक डिग्री चिकनाई व रूक्षत्व गुण वाले परमाणु के बन्ध का निषेध—जघन्य गुण वाले परमाणुओं का बन्ध नहीं होता है। यहाँ जघन्य गुण से केवल एक डिग्री का ग्रहण करना अर्थात् एक डिग्री वाले स्निग्ध अथवा रूक्ष परमाणुओं का बन्ध नहीं होता। जघन्य शब्द का अर्थ सबसे हल्का छोटा कैसा निकलता है सो शब्द की व्युत्पत्ति से अर्थ देखिये—जघन्यमिव जघन्यं यह निरुक्ति है, याने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो जाँघ की तरह हो उसे जघन्य कहते हैं। जैसे कि शरीर के अंगों में सबसे निकृष्ट अंग जंघा है उसी प्रकार किसी भी अन्य पदार्थ के बारे में सबसे निकृष्ट गुण की बात ली जाय तो उसे जघन्य कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से एक शिक्षा ग्रहण करना चाहिये कि पुरुष स्त्री के जंघा को कितना निकृष्ट घोषित किया गया है। जैसे किसी पदार्थ को निकृष्ट बताना है, किसी की आयु छोटी हो, गुण खोंटे हों, काम खोटा हो तो लोग कहते हैं कि इसका काम बहुत जघन्य है। इसकी चेष्टा जघन्य है। इसका अर्थ यह है कि इतनी खराब चेष्टा है कि जघा की तरह, जैसे कि शरीर के अंगों में जाँघ अतीव निकृष्ट है। अथवा दूसरी व्युत्पत्ति देखिये —जघने भवः जघन्यः, जो जंघा में हों उसे जघन्य कहते हैं। जंघा में निकृष्ट चीज क्या होती है जिस पर कामी लोग आसक्त होते हैं। वह इतना निकृष्ट है कि उसे जघन्य कहते हैं। उससे भी अधिक निकृष्ट कुछ कार्य अन्य नहीं होता। तो ऐसे ही जिन घटनाओं के लिये, जिन वस्तुओं के लिये जन्घय की बात कही जाय तो उसका अर्थ है सबसे छोटा, रद्दी, हीन।

एक डिग्री स्निग्ध रूक्ष वाले परमाणु का कितनी ही डिग्री गुण वाले परमाणुओं के साथ बंध का अभाव—गुण शब्द के अर्थ अनेक होते हैं। जैसे रूपादिक गुण। तो यहाँ रूप में गुण शब्द का अर्थ चला। वही हिस्सा अर्थ में आता है। जैसे दो गुना, तीन गुना। कहीं उपकार अर्थ में आता है कि यह कोई पुरुष गुणज्ञ है, अर्थात उपकार का जानने वाला है, कृतज्ञ है। कहीं गुण शब्द का प्रयोग द्रव्य में आता है, जैसे यह देश गुणवान है। जिसमें गायें और धान खूब निष्पन्न हैं। कहीं समता अर्थ में आता है, समान अवयव में आता। इससे दुगुनी रस्सी याने जितनी वह है उतनी अथवा उससे तिगुनी रस्सी। तो उनमें से यहाँ हिस्से के अर्थ में गुण को लेना है अर्थात जघन्य डिग्री का परमाणु बन्ध योग्य नहीं है। जघन्य गुण हैं जिन्होंके, उन्हें कहते हैं जघन्य गुण। ऐसा परमाणुओं का बन्ध नहीं है। एक गुण स्निग्ध का, एक गुण स्निग्ध वाले परमाणुओं से बन्ध नहीं होता। इसी तरह एक गुण की चिकनाई वाले परमाणु का किसी प्रकार की डिग्री वाले, २-४-६ अनन्त डिग्री वाले चिकनाई से युक्त परमाणुओं का भी बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार स्निग्ध का रूक्ष से, रूक्ष का स्निग्ध से, रूक्ष का रूक्ष से अर्थ लगाना याने एक डिग्री वाले चिकने व रूखे परमाणुओं का भी बन्ध नहीं होता हाँ उनमें उन्हीं के अगुरुलघुत्व हानि वृद्धि के अनुसार डिग्रियाँ बढ़ जायें तो वहाँ बन्ध हो सकता है। तो इस सूत्र में जघन्य गुण वाले परमाणुओं के बन्ध का निषेध किया है। तो क्या जघन्य गुण के स्निग्ध रूक्ष, गुण को छोड़कर अन्य सर्व तरह की डिग्रियों वाले चिकने रूखे परमाणुओं का बन्ध हो ही जाता है। इस कथन से तो सिद्ध होता कि सबका बन्ध हो जाना चाहिये। तो इसमें भी जिनका बन्ध नहीं होता उनका विवरण करने के लिए सूत्र कहते हैं।

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥५-३५॥

स्निग्धता व रूक्षता के अंशों की समानता होने पर परमाणुओं के बन्ध का अभाव—गुणों की समानता होने पर सदृश परमाणुओं का बन्ध नहीं होता। गुणों की समानता का अर्थ है कि समान डिग्री वाले परमाणु तथा सदृश का अर्थ है तुल्य जातीय। जैसे कोई ४ डिग्री का चिकना परमाणु है, तो उनका बन्ध न होगा। यहाँ शंका होती है कि गुण साम्ये, इतना शब्द कहने पर ही उसका अर्थ निकल आता है, फिर सदृशानां कहने की क्या जरूरत है? इसका उत्तर यह है कि सदृश शब्द यह सूचना देता है कि समानगुण वाले तुल्यजातीय का बन्ध नहीं होता, किन्तु भिन्न जाति में हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जायेगा। जिससे सार्थकहो जाता है। याने यहाँ सदृश ग्रहण अगर नहीं करते तो यह अर्थ होता कि गुण वाले स्निग्धों का २ गुणवालेस्निग्ध से बन्धनहीं होता। यहध्वनितनहीं हो पाता। सदृश मायने स्निग्ध औरसमान डिग्री वाले हों तो भी उनका बन्धनहीं होता औरविसदृश भी समानडिग्री वाले हों तो स्निग्ध ही हों उनका भी बन्धनहीं होता। सदृशानां शब्ददेकरयहअर्थ बनगया किसमान डिग्री वाला परमाणु सदृश भी हैं तो भी उनका बन्ध नहीं होता, यह तो इष्ट था ही और यह भी अर्थ हो गया कि समान डिग्री वाले विसदृश याने स्निग्ध रूक्षों का भी बन्ध नहीं होता। किन्हीं के मत से सदृशानां शब्द देकर यह भी अर्थ ध्वनित हो गया कि समान गुण वाले एक जाति के परमाणुओं का याने चिकने ही चिकने या रूखे ही रूखे परमाणुओं का बन्ध नहीं होता याने विषम गुण हो उन परमाणुओं में तो बंध होता है, किन्तु यह परम्परा सम्मत नहीं है। यहाँ तक इतनी बात कही गई कि एक डिग्री वाले रूखे चिकने परमाणुओं का बंध नहीं होता और समान डिग्री वाले रूखे चिकने परमाणुओं का भी बंध नहीं होता। तो इतना अर्थ अभी तक निकला कि विषम और अनेक डिग्री वाले परमाणुओं का बंध होता तो उसमें भी अनेक प्रकार सम्भव हैं। जैसे ३ डिग्री वाले कोई परमाणु हैं। दूसरे ७ डिग्री वाले हैं। उनका भी बंध हो जाना चाहिए। अनेक प्रकार होते हैं, तो उनमें भी नियम बनाने के लिए सूत्र कहते हैं।

द्वयधिकादिगुणानां तु ॥५-३६॥

दो या दो से अधिक अंश के स्निग्ध रूक्ष परमाणु का उससे दो अधिक अंशों के स्निग्ध रूक्ष परमाणु के साथ बन्ध होने का नियम—सूत्र का अर्थ है कि किन्तु दो अधिक डिग्री वाले परमाणुओं का ही बंध होता है, अर्थात असमान डिग्री वाले परमाणुओं का परस्पर बंध होता है, यह तो युक्त है ही, पर उसमें भी उन दोनों में केवल दो डिग्रियों का घटाव बढ़ाव होना चाहिए। जैसे एक अणु २ डिग्री का चिकना है और दूसरा अणु ४ डिग्री का चिकना या रूखा है तो उनका बन्ध हो जायेगा। इसी तरह अन्य उदाहरण भी लगाना। कोई १५ डिग्री का रूखा परमाणु है और दूसरा परमाणु १७ डिग्री का रूखा चिकना है तो उनका बंध हो तो जायगा। हाँ एक गुण वाले चिकने रूखे के साथ किसी का भी बन्ध नहीं होता। चाहे २ गुना अधिक हो, जैसे एक डिग्री के रूखे परमाणु का ३ डिग्री के रूखे चिकने परमाणु के साथ भी बंध नहीं होता। तात्पर्य यह है कि चाहे स्निग्ध स्निग्ध हो, रूक्ष रूक्ष हो, स्निग्ध रूक्ष हो, रूक्ष स्निग्ध हो। यदि एक की अनेक डिग्री से दूसरे की २ डिग्री अधिक हो तो उनका बंध हो जाता है।

संयोग और बन्ध के अन्तर का विवरण—यहाँ एक शंका हो सकती है कि उन परमाणुओं का संयोग हो गया है उसमें बंध की बात क्यों कही जा रही है? इकट्ठे परमाणु हो गये, पिण्ड बन गए। जैसे अनेक तिलों का लड्डू बन गया तो वहाँ संयोग ही तो हुआ है और पिण्ड एक हो जायगा। बंध की कल्पना क्यों की जा रही? इस शंका का उत्तर यह है कि संयोग में तो केवल प्राप्ति मात्र है। निकट आ गये, पर संयोग में परस्पर प्रवेश नहीं होता। और, बंध में उन स्कन्धों का, परमाणुओं का एक एक विशिष्ट प्रकार का बंध होता है, जिसका असर यह पड़ता है कि जिस परमाणु में जिस जाति का अधिक गुण है तो उस ही रूप दूसरा परमाणु परिणम जाता है। पर यह परिणमन संयोग अवस्था में नहीं हो सकता। इसी भाव को कहने के लिए सूत्र कहते हैं।

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥५-३७॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बन्ध होने पर अधिक गुण वालों की पारिणा मकता—बन्ध होने पर अधिक गुण वाले परमाणु पारिणामिक हो जाते हैं अर्थात दूसरे बद्ध परमाणु को अपने गुण रूप परिणमा लेते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि बंध अवस्था में अधिक डिग्री के परमाणु की जाति के अनुसार हीन गुण वाले परमाणु परिणम जाते हैं। जैसे कि ५ डिग्री का रूक्ष परमाणु है, उसका बन्ध ७ डिग्री के स्निग्ध के साथ हुआ है तो ५ डिग्री का रूक्ष परमाणु स्निग्ध रूप परिणम जायगा। यह बात बंध अवस्था होने पर ही होती है, संयोग होने पर नहीं होती। बन्ध और संयोग में यह अन्तर इस उदाहरण से स्पष्ट जान सकते हैं कि जैसे कोई अधिक मीठा गुड़ हो और उसमें कोई बारीक रेसे या अन्न आदिक गिर जाये तो वे दूसरे पदार्थ भी मीठे हो जाते हैं और जैसे लाल सूत और हरा सूत दोनों सूतों के ताने बाने से कपड़ा बुना जाय तो कोई भी सूत अपने रंग को नहीं छोड़ता। जो जिस रंग से रंगा है वह उसी रंग में रहता है। तो इस प्रकार परमाणुओं का बन्ध होने पर जो अधिक डिग्री वाला परमाणु है उसके अनुसार कम डिग्री वाला परमाणु परिणम जाता है। कभी स्कन्ध स्कन्धों का संयोग हो जाय तो वहाँ यह बात न पाई जायगी या परमाणुओं का भी निकट संयोग रहे तो भी यह परिणमाने वाली बात न पायी जायगी। कोई पुरुष इस सूत्र का ऐसा भी पाठ करता है कि बंधे समाधिकौ पारिणामिकौ, पर ऐसा पाठ उचित नहीं है। उस अन्य पाठ का यह अर्थ होता है कि जैसे दो गुण वाले चिकने परिणमाने वाले २ गुण वाले रूक्ष भी होते हैं, पर यह पाठ सिद्धांत के विरुद्ध है। आगम में, वर्गणा खण्ड में, बन्ध के विधान में यह सिद्धांत आया है कि नोआगम द्रव्य के बन्ध के विकल्प में जहाँ सादि वैस्रसिक बन्ध का निर्देश हो वहाँ यह जानना कि विषम चिकनाई होने पर और विषम रूखापन होने पर बन्ध तथा समान चिकनाई और समान रूखापन होने पर भेद होता है। और, इसके अनुसार गुण साम्ये सदृशनां यह सूत्र कहा गया है। इसमें समान गुण वाले के बन्ध का जब निषेध कर दिया तो बन्धे समः पारिणामिकः ऐसा कहना निरर्थक है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट होती है कि जघन्य गुण वाले परिणामों में तो बन्ध होता ही नहीं, किंतु चाहे वह स्निग्ध स्निग्ध हो, या रूक्ष रूक्ष हो, २ अधिक गुण वाले हैं, तो उनका परस्पर बन्ध होता है।

बन्ध विवरण से प्राप्तव्य मूल शिक्षा—इस बन्ध की इतनी बड़ी लम्बी चर्चा करने का प्रयोजन यह है कि आत्मा के योग व्यापार से आत्मा के प्रदेशों से स्निग्ध रूक्ष परिणाम वाले अनन्त परमाणु कर्म बन्ध को प्राप्त होते हैं। वहाँ उनका कैसा बन्धन चलता है इस बात का यहाँ विवरण किया गया है। जो कर्म बंधते हैं वे अनेक कोड़ा कोड़ी सागर तक की स्थिति के होते हैं और घन परिणाम वाले होते हैं कि उनका बन्ध उतने समय तक विघटित नहीं होता। अध्यात्म प्रयोजन में बंध की कथा कहने का कारण क्या है ? वह यही है कि यह ज्ञान में आये कि कर्म परस्पर बंधते हैं तो ऐसे ढंग से बंधते हैं और उनका बंध इतना दृढ़ होता है कि कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति तक भी वे अलग नहीं हो पाते। अथवा जब कभी अलग भी होता है तो वहाँ आत्मा के कैसे परिणाम निमित्त होते हैं ये सब बातें उस बन्ध प्रकरण में ज्ञात करना चाहिये। यहाँ तक पुद्गल द्रव्यों के बंध का विवरण किया गया है। अब इसी अध्याय के बहुत पहिले के प्रकरण पर दृष्टि दीजिए। जब इस अध्याय के पहले सूत्र के बाद २ सूत्र कहे द्रव्याणि और जीवाश्च। तो इन सूत्रों में द्रव्य का निर्देश तो किया गया, पर सुगम लक्षण नहीं बताया गया, सो अब द्रव्य का लक्षण कहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥५-३८॥

द्रव्य का लक्षण तथा गुण पर्यायों से द्रव्य के भिन्नपने व अभिन्नपने की मीमांसा—गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है । इस सूत्र में दो पद हैं । प्रथम पद है गुणपर्ययवत् और द्वितीय पद है द्रव्यं । प्रथम पद का समास है गुणाश्चते पर्यायाश्च गुणपर्याया: ते यस्य सन्ति इति गुणपर्ययवत् अर्थात गुण तथा पर्याय जिसके हैं वह द्रव्य कहलाता है । यहां एक आशंका होती है कि गुण और पर्याय ये द्रव्य से जुदे तो हैं नहीं । द्रव्य के क्षेत्र में है, द्रव्य के ही विशेषण हैं, द्रव्य के ही परिणमन हैं । तो जब गुण और पर्याय द्रव्य से भिन्न नहीं हैं तो उसमें मतु प्रत्यय कैसे लग सकता है ? जैसे धन वाला कहा तो धन जुदी चीज है, पुरुष जुदा है तो वहां वाला शब्द उपयुक्त हो जाता है, मगर गुण पर्याय तो द्रव्य से भिन्न है नहीं । उसमें वाला शब्द कैसे लगाया जा सकता ? अब इस शंका का समाधान करते हैं कि लोक में अभिन्न पदार्थों के भी मतु प्रत्यय का अर्थ देखा गया है । जैसे कहते हैं कि स्वर्ण की अंगूठी या स्वर्ण वाली अंगूठी, तो वह अंगूठी स्वर्ण से जुदी तो है नहीं । उस स्वर्ण का ही उस प्रकार का परिणमन है फिर भी वहां वाले शब्द का विशेषण लगा है, और फिर लक्षण से कथञ्चित् भेद भी सिद्ध है । देखिये—गुण और पर्याय द्रव्य से कथञ्चित् अभिन्न हैं और लक्षण भेद से कथञ्चित् भिन्न हैं । जैसे द्रव्य कहने से तो त्रिलोक त्रिकालवर्ती वे समस्त पदार्थ आ गये और पर्याय कहने से एक समय की हालत का ही परिणमन होता है । गुण कहने से द्रव्य की कोई एक विशेषता ही ग्रहण में आती है । गुण व पर्याय शब्द से पूरा द्रव्य ग्रहण में नहीं है । तो यों लक्षण से उनमें कथञ्चित् भेद भी है उसलिसे मतु प्रत्यय लगना युक्त है ।

गुण शब्द की प्रयोग्यता के विषय की मीमांसा—अब एक शंकाकार कहता है कि पदार्थ में गुण नहीं है, द्रव्य है और पर्याय है । गुण यह संज्ञा तो अन्य सिद्धान्त वालों की कही हुई दी गई है । जैन शासन में तो द्रव्य और पर्याय ये दो ही तत्त्व हैं और इसी कारण नय भी दो बनाये गये हैं—(१) द्रव्यार्थिक और, (२) पर्यायार्थिक । यदि गुण भी कुछ होता तो तीसरा नय और बनाया जाता—गुणार्थिक, पर तीसरा नय नहीं है । क्योंकि गुण ही नहीं है, फिर गुण पर्याय वाला द्रव्य है यह कहना कैसे युक्त हो सकता है ? इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि जैन शासन के हृदय में गुण का भी उपदेश है । अभो एक सूत्र आयेगा—द्रव्याश्रया निर्गुणागुणा:; वहाँ एकदम स्पष्ट हो जाता कि गुण की मान्यता जैन शासन में भी है । अब शंकाकार पुन: कहता है कि यदि गुण कहा तो गुण को विषय करने वाला एक गुणार्थिक नाम का तीसरा मूल नय भी प्राप्त होता है । इसके समाधान में कहते हैं कि द्रव्य के दो स्वरूप हैं—(१) सामान्य स्वरूप और, (२) विशेष स्वरूप । तो उसके सामान्य स्वरूप को उत्सर्ग, अन्वय, गुण, इन शब्दों से कहा जाता है, और द्रव्य का जो विशष रूप है उसे भेद पर्याय इस नाम से कहा जाता है तो गुण सामान्य स्वरूप रहे, पर्याय विशेष स्वरूप रहे और द्रव्य भी एक वस्तु है ही, जिसके दो स्वरूप कहे जा रहे हैं। तो जो सामान्य स्वरूप है वही तो गुण है । असाधारण लक्षण में द्रव्य का परिचय होता है वह लक्षण असाधारण गुण ही तो है । तो सामान्य को विषय करने वाले नय का नाम द्रव्यार्थिक है । सो जब अभेद दृष्टि से द्रव्यार्थिकनय का प्रयोग होता है तब तो उसका वाच्य द्रव्य ध्वनित होता है और जब भेद दृष्टि से सामान्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिकनय प्रयुक्त होता है तो उससे गुण ध्वनित होता है । पर्यायार्थिकनय में केवल पर्याय ही ग्रहण में आता है और इन दोनों नयों का जो समुदित स्वरूप है वही द्रव्य है । तो तीसरा नय गुणार्थिक कहने की आवश्यकता नहीं । मूल नय दो ही हैं—(१) द्रव्यार्थिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और, (२) पर्यायार्थिक। उन दोनों नयों का जो समुदयात्मक रूप है वह कहलाता है द्रव्य। अथवा गुण ही पर्याय है ऐसा भी कह सकेंगे। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये पर्यायें कहलाती हैं। पर्याय नाम भेद और अंश का भी है। उनसे भिन्न गुण नहीं है, इस कारण गुण ही पर्याय है, ऐसा समानाधिकरण्य मान लिया जाये तब सूत्र को गुण पर्ययवत् निर्देश से कहना अयुक्त नहीं है।

गुण की पर्याय स्रोतरूपता का संकेत—अब पुनः एक शंका आती है कि यदि गुण ही पर्यायें हैं तो दो विशेषण देना अनर्थक है। या तो गुणवद् द्रव्यं कहते या पर्ययवद् द्रव्यं कहते। दूसरा विशेषण देना व्यर्थ है, क्योंकि अर्थ में कोई भेद नहीं है। चाहे गुणवत् कहो चाहे पर्ययवत् कहो, जबकि गुण ही पर्यायें मान ली गई हैं। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि एक दृष्टि से देखें तो गुण ही तो उस परिणमन रूप से जाना गया है इसलिए पर्याय कह सकते हैं, पर गुण को कहना यों आवश्यक हुआ कि अन्य मतों में गुण पदार्थ को द्रव्य से जुदा माना है। मीमांसक सिद्धान्त में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ऐसे ७ पदार्थ माने गये हैं। जिसमें द्रव्य, गुण और कर्म ये तो सदा विशिष्ट ही माने गये हैं। तो द्रव्य को गुण से जुदा माना है अन्य दार्शनिकों ने, क्योंकि गुण अलग स्वतन्त्र सत् पदार्थ नहीं हैं, यह जाहिर करने के लिए सूत्र में गुण शब्द दिया है। अथवा कहो—द्रव्य, गुण, पर्यायमय होता है। इस प्रकार द्रव्य का लक्षण कहकर यहां तक ५ द्रव्यों के बारे में पूरा वर्णन किया गया है। अब जो एक शेष कालद्रव्य है उसका वर्णन करने के लिये सूत्र कहते हैं।

कालश्च ॥५-३६॥

काल द्रव्य में द्रव्य स्वरूप का निरखन—और काल भी द्रव्य है। द्रव्य के अब मुख्य दो लक्षण हुए। जो उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त हो वह द्रव्य है। जो गुण पर्याय वाला हो वह द्रव्य है। दोनों ही लक्षण कालद्रव्य में घटित होते हैं। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य अवस्थित है और वह कालद्रव्य एक प्रदेशी है। उसकी पर्यायें समय-समय के रूप में प्रति समय प्रकट होती रहती हैं तो पर्याय दृष्टि से उत्पाद व्यय रहा और द्रव्य दृष्टि से ध्रौव्य रहा। इस प्रकार काल द्रव्य में उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों ही पाये गये। इसी प्रकार जो ध्रौव्य है वह तो गुणों का है और उत्पाद व्यय पर्यायों का है। तो काल द्रव्य में भी सामान्य गुण हैं और परिणमन हेतुत्व नामक विशेष गुण भी हैं। तो काल द्रव्य में गुण पर्ययवद् द्रव्यं यह लक्षण भी घटित हो जाता है। जैसे कि आकाश आदिक जो द्रव्य हैं और उनमें द्रव्य के दोनों लक्षण घटित होते हैं ऐसे ही काल द्रव्य में भी दोनों ही लक्षण घटित होते हैं। काल द्रव्य में ध्रौव्य क्या है? सदा बना रहना। यह ध्रौव्य काल-द्रव्य में अपने आपके स्वरूप के ही कारण है क्योंकि स्वभाव सदा काल व्यवस्थित रहता है। अब काल द्रव्य के जो उत्पाद और व्यय हैं वे परद्रव्यनिमित्तक हैं और स्वनिमित्तक भी हैं। अगुरुलघुत्व गुण की हानि वृद्धि की अपेक्षा से देखें तो काल द्रव्य का परिणमन भी, उत्पाद-व्यय स्वनिमित्तक हुआ। अगुरुलघुत्व गुण भी कालद्रव्य का ही तो है और पर पदार्थों के परिणमन को निरखकर काल का ज्ञान होता है और समय व्यवहार परपरिणमन प्रत्ययक हो रहा है इस कारण काल द्रव्य का उत्पाद व्यय परप्रत्ययक भी है। इस प्रकार तो काल द्रव्य में पर्यायें हैं। अब इस काल द्रव्य के गुण भी देखिये—साधारण गुण भी हैं और असाधारण भी हैं। साधारण गुण तो अस्तित्व, वस्तुत्व आदिक हैं। असाधारण गुण वर्तना हेतुत्व है, अर्थात सर्व पदार्थों के परिणमन का निमित्त हुआ। कुछ गुण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साधारण, असाधारण भी होते हैं। जैसे अचेतनपना काल द्रव्य में भी है, पुद्गल आदिक अन्य द्रव्य में भी हैं मगर समस्त द्रव्यों में नहीं है। जीव में अचेतनपना नहीं है। इस प्रकार काल द्रव्य में साधारण, असाधारण और साधारणासाधारण गुण हैं। तो इन गुण पर्यायों से द्रव्य का परिचय मिलता है तो काल द्रव्य में भी काल द्रव्य की गुण पर्यायों से काल द्रव्य का परिचय होता है। अब काल द्रव्य की पर्यायों का संकेत करने के लिये सूत्र कहते हैं।

सोनन्तसमयः ॥५-४०॥

काल द्रव्य के समयनामक परिणमन के विषय की मीमांसा—वह काल द्रव्य अनन्त समय वाला है। काल द्रव्य इतना सूक्ष्म पदार्थ है कि जिसके बारे में संदेह अथवा यह कहना बन सकता है कि काल द्रव्य मानने की जरूरत ही क्या है? समय चल रहा है और उस निकलने वाले समय के अनुसार समस्त पदार्थ स्वयं ही परिणम रहे हैं, फिर काल द्रव्य के मानने की क्या जरूरत रही? अनेक दार्शनिकों ने काल को पृथक् द्रव्य नहीं माना। अगर वे यह विचार करें कि एक-एक समय नाम की यदि वास्तविक पर्याय न हो तो उन समयों के बिना जो दिन, महीना, वर्ष आदिक कहते हैं, ये विभाग नहीं बन सकते। पहले समय नाम की पर्याय तो अवश्य है, और जो भी पर्याय होती है उसका आधार जरूर होता है, वह परिणमन किसमें हुआ? तो समय नामक पर्याय काल द्रव्य में हुआ है। इससे काल द्रव्य की यह पर्याय है और वास्तव में काल द्रव्य है। इसमें मुख्य तो काल द्रव्य हैं, और वे असंख्यात हैं। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक काल द्रव्य अवस्थित है, पर यह सूत्र व्यवहार काल का परिणमन बताने के लिये कहा गया है। जब वर्तमान एक समय माना जाये तो अतीत और अनागत याने भूत और भविष्य समय भी समझे जा सकते हैं। तो भूत और भविष्य समयों की अपेक्षा अनन्त समय है और वर्तमान की अपेक्षा तो एक ही समय है और काल में जो परिणमन हो रहा है तो प्रत्येक काल का एक-एक समय परिणमन है, अथवा जो मुख्य काल द्रव्य है उसका ही प्रमाण बताने के लिए यह सूत्र कहा जा रहा क्योंकि अनन्त पर्यायों के परिणमन का निमित्त होने से, कारण होने से अथवा उपादान कारण होने से एक-एक प्रत्येक काल द्रव्य भी उपचार से अनन्त कहा जाता है। और समय तो एक अविभागी समय है। उन्हीं समयों का समूह बनाकर आवली, घड़ी, घण्टा, दिन, महीना आदिक बनते हैं। इस प्रकार यहाँ तक काल द्रव्य का व्याख्यान किया गया। अब इस प्रथम सूत्र में काल द्रव्य के वर्णन से पहले वाले सूत्र में बताया गया था कि द्रव्य गुण पर्याय वाले होते हैं। तो उनमें गुण क्या कहलाते हैं? गुणों का क्या लक्षण है? यह प्रकट करने के लिये सूत्र कहते हैं।

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥५-४१॥

द्रव्य के अंशभूत गुणों का सोपपत्तिक लक्षण—जो द्रव्य के आश्रय हैं और स्वयं गुणरहित हैं उन्हें गुण कहते हैं। गुणों में अगर गुण पाये जायें तो वे गुण न रहकर द्रव्य बन जायेंगे, क्योंकि जो गुण वाला है वह द्रव्य कहलाता है। गुण-गुण वाला नहीं हुआ करता। गुण तो द्रव्य की विशेषता की एक इकाई है, इस कारण गुण-गुणरहित ही होते हैं और वे गुण द्रव्य से अलग नहीं हैं। द्रव्य की ही यह एक विशेषता है—जैसे जीव द्रव्य। उसके गुण हैं ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द। तो यह द्रव्य की ही एक विशेषता हुई। अब ज्ञान गुण में और गुण नहीं है। जब कभी ज्ञान गुण को इस निगाह से देखते हैं कि ज्ञान में अस्तित्व गुण है। ज्ञान में ही श्रद्धा की बात होती है, ज्ञान ही ज्ञान रूप रहता,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसे चारित्र कहा गया है। तो ज्ञान में चारित्र भी है। जब इस तरह की दृष्टि करते हैं तो वहां पर वह आधारभूत ज्ञान द्रव्य रूप में निरखा गया है, तब उसमें अन्य गुणों की सम्भावना की जाती है। वस्तुत: गुणों में गुण नहीं होते। पारमार्थिक बात तो यह है कि गुण कोई पदार्थ नहीं, पर्याय कोई पदार्थ नहीं, इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है क्योंकि गुण की या पर्याय की यदि स्वतन्त्र सत्ता होती तो वह द्रव्य की ही तरह बिल्कुल अलग अपना पूर्ण स्वरूप रखती और उनमें भी गुण पर्याय बन जाती। तो चूंकि गुण और पर्याय द्रव्य से भिन्न प्रदेश में नहीं है? उन गुण पर्यायों में अन्य गुण पर्याय नहीं पाये जाते इस कारण गुण, पर्याय गुण सहित नहीं हैं किन्तु एक द्रव्य सत् को ही जब अन्वय दृष्टि से विशेषता सोचते हैं तो वहाँ गुण विदित होते हैं, और जब काल दृष्टि से विशेषता सोचते हैं तो वह पर्याय बन जाती है। तो द्रव्य की ही ये दोनों विशेषतायें हैं। एक ही समय में इन सब विशेषों को देखें तो गुण कहलाते और समय-समय में होने वाले द्रव्य की विशेषताओं को पर्याय कहते हैं। इस सूत्र में गुण का लक्षण कहा जा रहा है। ये गुण द्रव्य के आश्रय हैं। गुण जहां आश्रय पायें वह है द्रव्य। दूसरा विशेषण है निर्गुण। यह विशेषण दिया है कि गुणों में और गुण नहीं होते। यह प्रसिद्ध करने के लिये यदि यहाँ निर्गुणा: शब्द न देते और केवल इतना ही कहते— द्रव्याश्रया गुणा: अर्थात जो द्रव्य के आश्रय रहें उन्हें गुण कहते हैं। तो कार्य पर्याय, आकार ये भी तो कारण द्रव्य के आश्रय रह रहे हैं। जैसे गुण द्रव्य के आश्रय में हैं ऐसे ही पर्याय भी द्रव्य के आश्रय में है। तो उनको भी गुण मान लिया जाने का प्रसंग आता है, क्योंकि कारण द्रव्य के आश्रय में दो अणु वाले आदिक स्कन्ध हैं। परमाणु तो कारण रूप है और स्कन्ध कार्य रूप है, तो ये स्कन्ध भी गुण कहलाने लगते। इस आपत्ति के निवारण के लिये सूत्र में निर्गुणा: शब्द दिया है, दो अणु वाले स्कन्ध हैं तो उसमें भी गुण पाये जाते हैं। दृश्य स्कन्धों में तो पर्यायद्वार से गुण प्रकट समझ में आते। तो ये स्कन्ध या परिणमन गुण न कहलाने लगे, इसके लिये सूत्र में निर्गुणा: शब्द दिया है। यहां एक शंका और होती है कि यदि गुणा: द्रव्याश्रया: इतना ही गुणों का लक्षण कहा जाये तो इस तरह भी सूत्र लघु हो जाता है। इसका उत्तर यह है कि गुणा द्रव्याश्रया: ऐसा कहने पर जो पर्यायें हैं घटाकार उनमें गुणपना प्राप्त हो जाता है इसके उत्तर में कहते हैं कि सूत्र में जो द्रव्याश्रया: कहा है वहाँ अन्य पदार्थ विषयक बहुब्रीहि समास मत्वर्थ में आया है जिसका भाव है जो नित्य ही द्रव्य में रहता हो वह गुण है। पर्यायें भी द्रव्य में रहती हैं, किन्तु वे कदाचित् है। इस कारण द्रव्याश्रया के कहने से पर्यायों का ग्रहण नहीं होता। यों साधारण व असाधारण सब अन्वयी धर्म गुण है और द्रव्य व्यञ्जन पर्याय व गुणव्यञ्जन पर्याय, सभी व्यतिरेकी धर्म पर्यायें हैं। अब पर्याय अथवा परिणाम का लक्षण कहते हैं।

तद्भाव: परिणाम: ॥५-४२॥

समस्त पदार्थों में घटित होने वाला परिणाम अर्थात पर्याय का लक्षण—धर्मादिक द्रव्य जिस स्वरूप से होते हैं वह उनका तद्भाव कहलाता है, और तद्भाव का नाम है परिणाम। परिणाम का स्वरूप पहले उपकार के वर्णन के प्रकरण में कहा गया है। यह परिणाम दो प्रकार का होता है— (१) अनादि, (२) आदिमान। अनादि परिणाम तो धर्मादिक द्रव्यों के हैं। उनके ऐसा नहीं है कि धर्मादिक द्रव्य तो पहले हुये हैं। और गति में उपग्रह करना आदिक उपकार पीछे किया गया हो या पहले गति उपग्रह आदिक होते हों, पीछे धर्मादिक द्रव्यों का अस्तित्त्व बना हो, ऐसा नहीं, किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनका अनादि से सम्बन्ध है। अनादि से ही धर्मादिक द्रव्य हैं और अनादि से ही उनमें गति हेतुता है। सो यह तो है सब अनादि परिणाम और आदिमान परिणाम बाह्य कारण पाकर जिसका उत्पाद होता है वह है। जैसे सुख दुःख, जीवन मरण, श्वासोच्छ्वास आदिक आदिमान परिणाम जीव और पुद्गल के ही होते हैं। यद्यपि यह बात मोटे रूप से कही जाती है कि धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यों में अनादि परिणाम हैं, और जीव और पुद्गल में आदिमान परिणाम है। ऐसे विशेष परिणाम को देखकर कहा जाता है, पर यह सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि सर्व द्रव्यों के द्रव्य पर्यायात्मकपना होने पर ही सत्त्व होता है और सत्त्व अगर उनके उत्पाद व्यय रूप न हो तो नित्यपने का अभाव हो जायेगा, तब फिर किस प्रकार से ग्रहण करना परिणाम को ? यों ग्रहण करना कि सभी द्रव्य दुस्स्वरूप हैं ? द्रव्य और पर्याय दोनों नयों की विवक्षा से सभी द्रव्यों में अनादि परिणाम और आदिमान परिणाम सिद्ध होता है। जो अनादि से सिद्ध है ऐसे धर्मादिक चार द्रव्यों में भी अनादि परिणाम तो स्पष्ट है, पर चूंकि वह भी उत्पाद व्यय रूप है इस कारण उनमें आदिमान परिणाम आगम से सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार जीव और पुद्गल में अर्थ पर्याय की दृष्टि से सब आदिमान परिणाम हैं, पर औपाधिक भावों की दृष्टि से उनके सद्भाव अभाव की दृष्टि से उनमें आदिमान परिणाम होते हैं। तो इस सूत्र में परिणमन का लक्षण बताया है कि द्रव्यों का होना, भाव होना यही परिणाम हैं। इस प्रकार इस अध्याय में उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक गुण पर्यायमय जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल का स्वरूप कहा गया है। जैसे कि पहले अध्याय में ७ तत्त्वों का निर्देश किया गया था और उसके आधार पर जीवादिक तत्त्वों का वर्णन मोक्ष शास्त्र में चलना ही है तो जीव तत्त्व का वर्णन तो चौथे अध्याय तक हुआ और अजीव तत्त्व का वर्णन इस ५वें अध्याय में हुआ। अब आगे छठे अध्याय में आश्रव तत्त्व का वर्णन होगा।

Version 1